अनवर होजा का मार्क्सवाद : एक मूल्यांकन

दुनिया में जो भांति–भांति के मार्क्सवाद प्रचलित हैं उनमें से एक मार्क्सवाद अनवर होजा का भी है। अनवर होजा अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टी (1948 से अल्बानिया की श्रम की पार्टी) के संस्थापक और नेता थे। 1970 के दशक के मध्य में उन्होंने माओ को संशोधनवादी घोषित करके अपना अलग मार्क्सवाद प्रचारित किया तथा अपनी पार्टी के इर्द–गिर्द कुछ देशों के कुछ मार्क्सवादी–लेनिनवादी ग्रुपों को इकट्ठा किया। तब से ही यह विशिष्ट किस्म का मार्क्सवाद प्रचलन में है।

इस लेख में हम अनवर होजा के इसी मार्क्सवाद का जायजा लेंगे और देखेंगे कि कैसे यह मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा का विरोध करके स्वयं मार्क्सवाद विरोधी बन जाता है, सर्वहारा विरोधी विचारधारा में परिणत हो जाता है।

I अल्बानिया, अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टी और अनवर होजा

अल्बानिया दक्षिणी यूरोप के बाल्कन क्षेत्र में एक छोटा सा देश है। इसका कुल क्षेत्रफल महज 28000 वर्ग किलोमीटर है। 1940 के दशक में इसकी आबादी दस लाख थी और 1970 के दशक में 20 लाख। तब इतने ही अल्बानियाई देश के बाहर थे जिसमें ज्यादातर यूगोस्लाविया में थे। अल्बानिया के दक्षिण में ग्रीस (यूनान) है तो उत्तर पूर्व में यूगोस्लाविया। इसके दक्षिण हिस्से में थोड़ी संख्या में यूनानी भी रहते हैं।

अल्बानिया लगभग पांच शताब्दियों तक आतोमन साम्राज्य के कब्जे में रहा। लेकिन अल्बानिया के लोग अपनी आजादी के लिए संघर्ष करते रहे और अंततः नवंबर 1912 में इसने अपनी आजादी की घोषणा कर दी। वस्तुतः अल्बानिया के लोग यूरोप के सबसे स्वतंत्रता प्रिय लोगों में हैं और उन्होंने हमेशा ही विदेशी कब्जे के खिलाफ संघर्ष किया है।

आजादी की घोषणा के बाद अल्बानिया में जो शासन कायम हुआ वह सामंती तत्वों और जमींदारों का था। इसके खिलाफ जून 1924 में विद्रोह हुआ। लेकिन इस विद्रोह की सफलता के बावजूद कोई जनपक्षधर शासन कायम नहीं हो पाया। दिसंबर 1924 में अहमत जोग ने गणतंत्र की घोषणा की और स्वयं राष्ट्रपति बन गया। इसके बाद उसने 1928 में अपने को राजा घोषित कर दिया और अल्बानिया में राजशाही कायम कर दी। जोग को यूनान के शासकों का समर्थन हासिल था।

इस समय का अल्बानियाई समाज अत्यंत पिछड़ा था। उद्योग नहीं के बराबर थे। छोटे–छोटे कुछ शहरों में दस्तकारियां थीं। इन्हीं में कुछ मजदूर काम करते थे। देश की अधिकांश आबादी, लगभग 90 प्रतिशत, किसान थी। सामाजिक आर्थिक व्यवस्था अर्ध–सामंती थी।

रूस की अक्टूबर समाजवादी क्रांति और सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना के प्रभाव में अल्बानिया में भी मार्क्सवादी विचारों का प्रसार होने लगा था। 1928 में कोर्चा नामक शहर में पहले कम्युनिस्ट सेल की स्थापना हुई और 1929 में वहां एक कम्युनिस्ट ग्रुप, कोर्चा कम्युनिस्ट ग्रुप काम करने लगा। 1934 में एक दूसरे शहर शकोद्रा में दूसरे कम्युनिस्ट ग्रुप की स्थापना हुई। इन ग्रुपों का कौमिंटर्न से सम्बन्ध स्थापित हुआ और वहां से इन्हें कुछ निर्देश भी मिले।

1939 में द्वितीय विश्व युद्व की शुरुआत से ही अल्बानिया बहुत कठिन स्थिति में फंस गया। इटली ने अप्रैल 1939 में हमला करके इस पर कब्जा कर लिया और इसे इटली के राज्य में समाहित कर लिया। 1943 में मुसोलिनी की पराजय के बाद ही अल्बानिया इटली के कब्जे से मुक्त हो पाया, लेकिन तुरंत ही हिटलर ने इस पर कब्जा कर लिया। हिटलर के कब्जे से अल्बानिया को मुक्ति नवंबर 1944 में ही मिली।

अल्बानिया पर साम्राज्यवादियों का कब्जा यदि अत्यंत विनाशकारी और पीड़ादाई था तो इसने वहां मजदूर वर्ग का राज कायम होने का मार्ग भी प्रशस्त किया। इस युद्व में कम्युनिस्टों ने जो भूमिका निभाई, अल्बानिया की राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष में उन्होंने जो नेतृत्व प्रदान किया और बढ़–चढ़ कर बलिदान किया उसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्व की समाप्ति होते–होते न केवल अल्बानिया आजाद हो गया बल्कि वहां कम्युनिस्टों के नेतृत्व में मजदूरों–किसानों का जनवादी राज्य भी कायम हो गया।

1939 में ही दोनों कम्युनिस्ट ग्रुपों को मिलाकर एक कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के प्रयास हुए। कोर्चा और शकोद्रा ग्रुपों से दो–दो लोगों को लेकर एक केन्द्रीय समिति का गठन किया गया। लेकिन इससे कोई वास्तविक एकता कायम नहीं हो पाई।

1941 में इटली के खिलाफ छापामार युद्व शुरू होने के साथ ही एकता के फिर प्रयास हुए। सारे ही कम्युनिस्ट इस कठिन स्थिति में एकता के लिए उद्यत थे। एक एकल कम्युनिस्ट पार्टी के बिना इटली के खिलाफ लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी।

अंततः नवंबर 1941 में अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। इस एकता में एकता के रास्ते में आड़े आ रहे ग्रुपों के फराने नेताओं को अलग कर दिया गया और नये नेतृत्व का चुनाव हुआ। एक सात सदस्यीय केन्द्रीय समिति चुनी गई। हालांकि किसी सचिव का चुनाव नहीं हुआ पर अनवर होजा इस कमेटी के मुखिया बने। समूची पार्टी के फनर्गठन का निर्णय लिया गया। और फराने सेलों को भंग कर फिर से सेल बनाए गये।

अनवर होजा का जन्म 1908 में हुआ था। वे सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए स्कॉलरशिप पर फ्रांस गये। वहां कुछ राजनीतिक गतिविधियों में लिप्त होने के कारण उनकी स्कॉलरशिप बंद हो गई। तब उन्होंने बेल्जियम जाकर ब्रुसेल्स में अल्बानियाई कौन्सुलेट में नौकरी की और अपनी शिक्षा जारी रखी। 1936 में अल्बानिया लौटकर वे स्कूल में अध्यापक बन गये। इसी समय से उन्होंने मार्क्सवाद भी स्वीकार किया और कोर्चा ग्रुप में काम करने लगे। 1939 में इटली के कब्जे के बाद उन्होंने सेना में भर्ती होने से इंकार कर दिया और नौकरी से इस्तीफा दे दिया। कोर्चा ग्रुप ने उनको तिराना में काम को संगठित करने के लिए भेजा। वहां काम संगठित करने के साथ–साथ होजा ग्रुपों की एकता के लिए भी प्रयास करते रहे।

1941 में एकीकृत पार्टी गठित होने के बाद इटली के कब्जे के खिलाफ मुक्ति संघर्ष ने गति पकड़ी। इसके लिए पार्टी ने एक राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा का भी गठन किया। यह मोर्चा पार्टियों का मोर्चा होने के बदले नीचे से मोर्चा था। इसमें मुख्यतः मजदूर–किसान थे, साथ ही पेटी बुर्जुआ बुद्विजीवी और कुछ छोटे पूंजीपति भी।

देश के सम्पत्तिवान वर्गों ने कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा गठित मोर्चे के खिलाफ अपना एक अलग मोर्चा बनाया जो बल्ली कोम्बेतार कहलाया। इसमें प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ बुद्विजीवी, बड़े भूस्वामी, बड़े व्यापारी, प्रतिक्रियावादी पादरी, धनी किसान इत्यादि थे। इस मोर्चे के गठन ने राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष में जटिलताएं तो पैदा कीं लेकिन यह कम्युनिस्ट पार्टी का रास्ता नहीं रोक पाया।

छापामार युद्व से शुरू कर इटली के कब्जे के खिलाफ हथियार–बंद संघर्ष लगातार बढ़ता रहा और धीरे–धीरे मुक्ति सेना के गठन की स्थिति तक पहुंच गया। सितंबर 1943 में इटली की पराजय के बाद उसके अल्बानिया से हटने से लाभ उठाकर हिटलर के जर्मनी ने उस पर कब्जा कर लिया। अब मुक्ति युद्व इसके खिलाफ लक्षित हो गया। विभिन्न पड़ावों से गुजरता हुआ मुक्ति युद्व अंततः पूरे देश को आजाद करने में कामयाब हो गया। नवंबर 1944 में अल्बानिया आजाद हो गया। इस मुक्ति युद्व में 10 लाख अल्बानियाइयों ने अपनी भूमि पर सत्तर हजार हमलावरों को मार गिराया।

मुक्ति के समय अल्बानिया की राष्ट्रीय मुक्ति सेना में कुल सत्तर हजार लोग थे। इसमें 90 प्रतिशत किसान थे। मुक्ति के समय अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य संख्या 2800 थी।

अल्बानिया की पार्टी के आधिकारिक इतिहास के अनुसार इस मुक्ति युद्व की चालक शक्ति मजदूर, गरीब किसान व मध्यम किसान थे। हालांकि अभी अल्बानिया में औद्योगिक मजदूर न के बराबर था लेकिन तब भी उसने अपनी पार्टी गठित की और इसी के नेतृत्व में मुक्ति युद्व लड़ा गया। किसान राष्ट्रीय मुक्ति युद्व के अक्षय स्त्रोत और मुख्य हथियारबंद शक्ति थे। नौजवान इस मुक्ति युद्व की सबसे ज्यादा सक्रिय ताकत थे। अल्बानियाई औरतों ने भी इस युद्व में बड़ी भूमिका निभाई। इस राष्ट्रीय मुक्ति युद्व की प्रेरक, संगठनकर्ता और नेता कम्युनिस्ट पार्टी थी और इस ऐतिहासिक विजय का बाहरी कारक सोवियत संघ का महान देशभक्तिपूर्ण युद्व और फासीवाद पर उसकी विजय थी।

राष्ट्रीय मुक्ति के बाद मुक्ति युद्व के दौरान गठित राष्ट्रीय मुक्ति परिषद को जनवादी मोर्चे का रूप प्रदान किया गया और इसी ने 1945 में सरकार बनाई। इस सरकार के मुखिया अनवर होजा थे। जो तत्व बल्ली कोम्बेतार में शामिल थे वे इस सरकार से बाहर थे। इस तरह यह सरकार मूलतः मजदूरों–किसानों की सरकार थी। इस सरकार ने जनवादी कार्यभारों को पूरा करते हुए समाजवाद में संक्रमण का कार्यभार सामने रखा।

1944–45 में थोड़े बहुत जो उद्योग थे उनका राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। भूमि सुधार शुरू हुए लेकिन जो भूमि वितरण हुआ उसमें काफी जमीन भूस्वामियों के हाथों में छोड़ दी गई।

1946 में संविधान सभा ने अल्बानिया का संविधान बनाया। अल्बानिया को जनवादी गणराज्य घोषित किया गया। अनवर होजा इसके मुखिया बने। आधिकारिक इतिहास के अनुसार यह जनवादी गणराज्य सर्वहारा की तानाशाही का ही रूप था। जन परिषदें इसका आधार थीं और जो जनवादी मोर्चा गठित हुआ था वह सर्वहारा की तानाशाही में कायम होने वाला मजदूर–किसान संश्रय था।

1947 तक सारे ही उद्योगों व खनन का राष्ट्रीयकरण हो गया था लेकिन खुदरा व्यापार का 80 प्रतिशत निजी हाथों में था। 1947.48 के दौर में भूमि वितरण को और ज्यादा कसते हुए स्वेच्छा से कृषि सहकारिता की ओर बढ़ने की नीति अपनाई गई।

अल्बानिया की तरह यूगोस्लाविया में भी द्वितीय विश्व युद्व के दौरान राष्ट्रीय मुक्ति युद्व लड़ा गया था। इसका नेतृत्व यूगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी ने किया था। जोसफ ब्राज टीटो इसके नेता थे। मुक्ति के बाद छः गणराज्यों को लेकर यूगोस्लाव गणराज्य का गठन किया गया। लेकिन टीटो और उनकी पार्टी शुरू से ही राष्ट्रवादी भटकाव के शिकार थे। इसी के कारण यूगोस्लाव नेतृत्व ने अल्बानिया को अपने संघ का हिस्सा बनाने की कोशिश की। इसके लिए शुरू में मौद्रिक व आर्थिक एकीकरण की बात की गई। अल्बानिया की पार्टी में कोची जोजे, पान्डी क्रिस्टो और क्रिस्टो थेमिल्को जैसे नेता इसके पक्ष में थे। लेकिन अनवर होजा और अन्य इसके विरोध में थे। 1946.48 में यह संघर्ष पार्टी में चलता रहा और जोजे इत्यादि एक हद तक कामयाब भी हो गये थे। लेकिन तभी राष्ट्रवादी भटकावों के कारण यूगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी को कौमिन्फार्म से बाहर कर दिया गया। जून 1948 में यूगोस्लाविया की पार्टी के राष्ट्रवादी भटकावों के खिलाफ प्रस्ताव लिए जाने के बाद उसके निष्कासन के बाद उसके समर्थक अल्बानिया की पार्टी में किनारे लगा दिये गये और होजा का नेतृत्व दृढ़ता से स्थापित हो गया।

1948 में अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टी की पहली कांग्रेस आयोजित की गई। 1941 में स्थापित होने के बाद से अब तक पहली बार एक पार्टी संविधान भी बनाया गया और स्वीकार किया गया। इसी कांग्रेस में स्टालिन की सलाह पर पार्टी का नाम बदल कर अल्बानिया की श्रम की पार्टी (च्तजल वि संइवनत वि ।सइंदपं) कर दिया गया। स्टालिन ने कहा था कि चूंकि अल्बानिया में मजदूर बहुत कम हैं इसलिए उसकी पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी के बदले श्रम की पार्टी रख लेना चाहिए। बाद में भी यही नाम चलता रहा।

समाजवाद की ओर कदम के बावजूद अल्बानिया में राह आसान नहीं थी और कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसी के चलते 1949 में कदम पीछे खींचने पड़े और किसानों को यह छूट देनी पड़ी कि वे एक निश्चित मात्रा में अपना उत्पाद सरकार को बेचने के बाद बाकी खुले बाजार में बेचें। इसके पहले सरकार सारा ही अतिरिक्त उत्पाद ले लेती थी।

1950 में अबादीन सेहू और नियाजी इस्लामी के खिलाफ संघर्ष चलाया गया। यह पार्टी विरोधी गुट पराजयवादी मानसिकता का शिकार हो गया था। इसे पार्टी की आर्थिक नीति और जनता पर भरोसा नहीं था। बाद में इसी साल जिन माकू और नेक्छिय विन्चानी के खिलाफ संघर्ष चला। ये पार्टी नेतृत्व की जड़ काट रहे थे। इन संघर्षों के बाद तय किया गया कि पार्टी का शुद्विकरण किया जाय और पार्टी की सदस्यता का फनरीक्षण किया जाय।

लेकिन इसके बावजूद 1951 में पार्टी में एक और संघर्ष शुरू हो गया। यह संघर्ष पोलित ब्यूरो सदस्य और केन्द्रीय समिति के सांगठनिक मामलों के सचिव टुक जुकोवा के खिलाफ था। जुकोवा ने अवसरवादी नीति अपनाई और कठिनाइयों के सामने आत्म समर्पण कर दिया। जुकोवा को पोलित ब्यूरो और उपरोक्त सचिव पद से हटा दिया गया।

1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में ख्रुश्चोव जैसे संशोधनवादी सत्तासीन हो गये। पार्टी और राज्य में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद ख्रुश्चोव ने खुलेआम संशोधनवादी नीति प्रस्तावित करनी शुरू कर दी। उसने यूगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी के बारे में कौमिन्फार्म के 1948 के निर्णय को पलट दिया तथा यूगोस्लाविया को समाजवादी देश घोषित कर दिया। 1956 में सोवियत पार्टी की बीसवीं कांग्रेस में उसने ''तीन शांतिपूर्ण'' का अपना संशोधनवादी सिद्वान्त प्रस्तावित किया और स्टालिन को पूर्णतया नकारने वाला और उन पर तथा सोवियत समाजवाद पर कालिख पोतने वाला अपना कुख्यात भाषण दिया। इसके चलते विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन में भारी विभ्रम पैदा हुआ और भांति–भांति के अवसरवादी–संशोधनवादी सक्रिय हो गये।

अल्बानिया में भी टुक जुकोवा और बेद्री सिपाहू के नेतृत्व में एक गुट तुरंत सक्रिय हो गया। इसने पार्टी की आम नीति की समीक्षा करने तथा नेतृत्व मे बदलाव करने की मांग की। लेकिन यह गुट पराजित कर दिया गया और इन्हें पार्टी से निष्कासित कर दिया गया।

1956 में अल्बानिया की पार्टी की तीसरी कांग्रेस आयोजित की गई। इस कांग्रेस ने ख्रुश्चोव की संशोधनवादी नीतियों से अपनी असहमति तो जाहिर की लेकिन इनकी भर्त्सना नहीं की। आधिकारिक इतिहास में इसका कारण यह बताया गया कि ऐसा करके वे दुश्मनों को खुश होने का मौका नहीं देना चाहते थे। अभी भर्त्सना करने का समय नहीं आया था और वे उचित मौके का इंतजार कर रहे थे।

इस कांग्रेस ने देश में सामूहिकीकरण का अभियान चलाने का पैफसला किया और 1960 तक यह 87ः तक प्राप्त कर लिया गया। 1960 में औद्योगिक उत्पादन का 100%, कृषि उत्पादन का 80%, थोक व्यापार का 100 प्रतिशत और खुदरा व्यापार का 90% सरकारी हाथों में या सामूहिक था।

खुश्चोव द्वारा बीसवीं कांग्रेस में संशोधनवाद प्रस्तावित करने के तुरंत बाद ही उसके खिलाफ संघर्ष शुरू हो गया। इसमें अग्रणी भूमिका निभाई माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने। 1956 में ही चीन की पार्टी ने स्टालिन की रक्षा करते हुए दो लेख लिखे–''सर्वहारा अधिनायकत्व के इतिहास के बारे में'' और ''सर्वहारा अधिनायकत्व के इतिहास के बारे में कुछ और''। अल्बानिया की पार्टी इस संघर्ष में चीन की पार्टी के साथ हो गई।

खुश्चोव ने सोचा था कि पूर्वी यूरोप की बाकी पार्टियों की तरह (केवल रूमानिया की पार्टी ने ही कुछ–कुछ दूरी बनाते हुए बीच की अवस्थिति ग्रहण की थी) अल्बानिया की पार्टी भी मार्क्सवाद पर हमले में उसके साथ होगी। लेकिन जब उसने ऐसा होते नहीं देखा तो वह बुरी तरह चिढ़ गया। तब से उसने अल्बानिया को सोवियत संघ द्वारा दी जाने वाली सहायता में कटौती करते हुए उस पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। 1960 में रूमानिया की पार्टी की कांग्रेस के अवसर पर बुखारेस्ट में दोनों पार्टियों के बीच सीधा टकराव हुआ और 1961 में सोवियत संघ ने अल्बानिया से सारे आर्थिक सम्बन्ध तोड़ लिए। सोवियत संघ से आर्थिक सम्बन्ध टूटने के कारण अल्बानिया भारी आर्थिक संकट में पड़ गया लेकिन इस स्थिति से उबरने में चीन ने उसकी मदद की। हांलांकि चीन खुद भी एक पिछड़ा देश था लेकिन उसने अपने बिरादराना देश की मदद करने की पूरी कोशिश की।

सोवियत पार्टी और खुश्चोव के साथ टकराव के इसी दौर में अल्बानिया की पार्टी में लिरी बोलिशोवा और काचो ताश्को का पार्टी विरोधी गुट पैदा हुआ। ये लोग सोवियत समर्थक थे और पार्टी को खुश्चोव के रास्ते पर ले जाना चाहते थे। इन्हें पराजित किया गया और किनारे लगा दिया गया।

जब 1966 में चीन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति शुरू हुई तो अल्बानिया की पार्टी ने भी अपने देश में सांस्कृतिक क्रांति छेड़ी। इसे उन्होंने 'पार्टी और देश के जीवन के और ज्यादा क्रांतिकरण' का नाम दिया। 1971 से उन्होंने इसे 'तीव्र वर्ग संघर्ष के द्वारा सभी क्षेत्रों में समाजवादी क्रांति को गहरा बनाना' कहा।

लेकिन सांस्कृतिक क्रांति के सम्बंध में अल्बानिया की पार्टी की धारणा वह नहीं थी जो चीन की पार्टी और माओ की थी। हालांकि अल्बानिया की पार्टी 'महान बहस' में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ थी और 1963 में इस बहस के खुलने पर जब चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने प्रसिद्व नौ टिप्पणियां प्रकाशित करनी शुरू की तो अनवर होजा को अतीव खुशी हुई, लेकिन तब भी ये चीन की पार्टी और माओ की सांस्कृतिक क्रांति पर सहमत नहीं थे। यह असहमति बाद में इनके सीधे विरोध तक जा पहुंची।

1971 में जब चीन ने संयुक्त राज्य अमेरिका से सम्बन्ध सामान्य बनाने के प्रयास शुरू किये तो अल्बानिया की पार्टी को यह नागवार गुजरा। उसके हिसाब से सोवियत संघ और अमेरिका दोनों से सम्बन्ध नहीं कायम किये जाने चाहिए थे। और जब यह प्रयास बढ़कर 1972 में निक्सन की चीन यात्रा तक पहुंचा तो अल्बानिया की पार्टी ने इसे अपने तईं मार्क्सवाद–लेनिनवाद से विश्वासघात माना। इसे अवसरवादी– संशोधनवादी कदम करार दिया। इसी नजरिये से अल्बानिया की पार्टी ने चीन की पार्टी को पत्र लिखा और अपना विरोध दर्ज कराया। इसके बाद दोनों पार्टियों के बीच संबंध धीरे–धीरे खराब होने शुरू हुए। जिस अनुपात में दोनों के सम्बन्ध खराब होते गये और इनका प्रभाव आर्थिक सम्बन्धों पर पड़ता गया उसी अनुपात में अल्बानिया की पार्टी चीन की पार्टी के प्रति आलोचनात्मक होती गई। 1976 की शुरुआत होते–होते उन्होंने माओ और चीन की पार्टी को संशोधनवादी मान लिया हालांकि उसे बाहर घोषित नहीं किया। चीन और चीन की पार्टी के साथ उनके औपचारिक सम्बन्ध पूर्ववत बने रहे।

1973–74–75 में अल्बानिया की पार्टी के ऊपरी हलकों में शुद्विकरण अभियान चलाया गया। 1973 में कादिल पचरामी (तिराना जिला पार्टी सचिव) व टोडी लुबोन्जा (रेडियो व टीवी निदेशक) को साहित्य व कला में उदारतावाद का आरोप लगाकर उनके पदों से हटा दिया गया। 1974 में बकीर बलाकू (रक्षा मंत्री), पेत्रित दूमें (जनरल स्टाफ का मुखिया) व हितो याको (सेना व राजनीतिक निदेशालय का मुखिया) पर सोवियत संघ व यूगोस्लाविया का एजेन्ट होने और चीन से भी गैर कानूनी संबन्ध होने का आरोप लगाकर उन्हें उनके पदों से बर्खास्त कर दिया गया और पार्टी से निष्कासित कर दिया गया। 1975 में अब्दिल केलेजी (योजना आयोग के अध्यक्ष), कोचो थिपोदोसी (उद्योग व खनन मंत्री) तथा कीचो न्जेलार (व्यापार मंत्री) पर अर्थव्यवस्था में तोड़–फोड़ करने का आरोप लगाकर बाहर कर दिया गया। बाद में अधिकारिक इतिहास में यह कहा गया कि ये दोनों पार्टी विरोधी गुट चीन के नेतृत्व के बहकावे में आकर यह सब कर रहे थे।

इस शुद्विकरण अभियान के बाद 1976 में आयोजित पार्टी की सातवीं कांग्रेस में देश को जनता का समाजवादी गणराज्य घोषित करने का फैसला लिया गया। इसी समय से अल्बानिया की पार्टी ने आंतरिक तौर पर चीन की पार्टी के बारे में सूत्रीकरण का अभियान तेज कर दिया जिसमें वह कदम–ब–कदम आगे बढ़ती गई। 1977 की शुरुआत से इसने चीन की पार्टी के खिलाफ प्रकारान्तर से खुला वैचारिक संघर्ष शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप अब दोनों देशों के बीच संबंध खराब होने लगे। अंततः जुलाई 1978 में चीन ने अल्बानिया से अपने सारे आर्थिक सहायता के सम्बन्ध तोड़ लिए। अल्बानिया की पार्टी अब एकदम अलग–थलग पड़ गई। हांलाकि उसने 1973 से ही विभिन्न देशों के ढेरों छोटे–छोटे मार्क्सवादी–लेनिनवादी ग्रुपों को अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के नाम पर इकट्ठा करना शुरू किया था लेकिन ये प्रभावहीन थे। 1970 के दशक की शुरुआत से ही इसने कई देशों से संबंध सुधारने शुरू किये थे मसलन 1971 में यूनान से राजनीतिक सम्बन्ध और यूगोस्लाविया से सामान्य आर्थिक सम्बन्ध। लेकिन अब ये प्रयास तेज हो गये। सोवियत संघ व अमेरिका को छोड़कर सभी देशों से राजनीतिक–आर्थिक सम्बन्ध कायम करने की कोशिश की गई।

पार्टी के ऊपरी हलकों में शुद्विकरण के बाद अनवर होजा ने 1980 से रमीज आलिया को अपने उत्तराधिकारी के तौर पर आगे बढ़ाना शुरू किया। होजा के फराने साथी मेहमत सेहू को किनारे ठेल दिया गया। सेहू ने 1981 में आत्महत्या कर ली और 1982 में सेहू पर संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, यूगोस्लाविया और इग्लैण्ड का जासूस होने का आरोप लगाकर उनके समर्थकों को पार्टी से निकाल दिया गया।

1983 से ही अनवर होजा एक तरह के सेवानिवृत्ति की अवस्था में चले गये और रमीज आलिया ने प्रशासन का कार्यभार संभाल लिया। अप्रैल 1985 में होजा की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद रमीज आलिया देश के राष्ट्रपति और पार्टी के सचिव बन गये।

आलिया ने अर्थव्यवस्था और राजनीति में कुछ 'उदार' कदम उठाये और यूनान, इटली, तुर्की तथा यूगोस्लाविया से संबंध मजबूत बनाने के प्रयास किये।

1989 के अंत में पूर्वी यूरोप की संशोधनवादी सत्ताओं के पतन के बाद अल्बानिया की श्रम की पार्टी के लिए स्थितियां कठिन हो गई। देश के भीतर असंतोष के स्वर फूटने लगे। 1989 व 90 में छात्रों और नौजवानों के विरोध प्रदर्शन हुए।

इन सबके चलते 1990 में खुले पूंजीवाद की दिशा में कुछ कदम उठाये गये। खुदरा व्यापार में निजी क्षेत्र को छूट दी गई और सामूहिक फार्म के किसानों को बड़े–बड़े निजी खेत भी दिये गये। चुनावों में दो उम्मीदवारों के खड़ा होने की व्यवस्था की गई। दिसंबर 1990 में बहुदलीय प्रणाली लागू की गई।

फरवरी 1991 में अल्बानिया में बहुदलीय चुनाव हुए। इसमें अल्बानिया की श्रम की पार्टी को दो तिहाई बहुमत मिला। इस पार्टी के नैनो फस्टो प्रधानमंत्री बने।

लेकिन तब तक अल्बानिया में भी खुले पूंजीवादीकरण की प्रक्रिया बहुत तेज हो गई थी। 1991 में बुर्जुआ राजनीतिक व्यवस्था कायम की गई और देश का नाम अल्बानिया की जनता का समाजवादी गणतंत्र से बदलकर अल्बानिया का गणतंत्र कर दिया गया।

इसके बाद पार्टी को भी बदलना ही था। जून 1991 में अल्बानिया की श्रम की पार्टी की दसवीं कांग्रेस हुई। इसमें पार्टी का नाम बदल कर अल्बानिया की समाजवादी पार्टी कर दिया गया और इसे कम्युनिस्ट पार्टी के बदले जनवादी समाजवादी पार्टी के रूप में परिभाषित किया गया। इसमें अनवर होजा पर हमला किया गया और नैनो फस्टो को पार्टी को नेता चुना गया।

बाहरी शक्तियों की मदद से भीतरी तत्व सरकार पर हमला करते रहे और जून 1991 में नैनो को इस्तीफा देना पड़ा। एक मिली जुली सरकार कायम हुई। लेकिन विरोधी शांत नहीं बैठे। अप्रैल 1992 में रमीज आलिया ने राष्ट्रपति पद से इस्तीफा दे दिया। 1992 में हुए चुनाव में अल्बानिया की डेमोक्रेटिक पार्टी (जो 1990 में गठित हुई थी) ने चुनाव जीत लिया और उसका नेता नया राष्ट्राध्यक्ष बन गया।

इस तरह 1992 का अंत होते–होते अल्बानिया भी बाकी पूर्वी यूरोपीय देशों की स्थिति में पहुंच गया। साम्राज्यवादियों द्वारा समर्थित तथाकथित डेमोक्रेट वहां सत्तारूढ़ हो गये और उन्होंने तेजी से निजीकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी। रमीज आलिया और उनकी पार्टी के कुछ अन्य लोगों को ठिकाने लगाने के लिए उन्हें 1993 में भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग का आरोप लगाकर जेल में बन्द कर दिया गया।

उसके बाद का अल्बानिया का इतिहास पूर्वी यूरोप के अन्य देशों के जैसा ही रहा है।

II माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी समाज

अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी ने अपने आप को शत–प्रतिशत मार्क्सवादी घोषित किया और यहीं से खड़े होकर उन्होंने माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और बाकी सबकी आलोचना की। उन्होंने कहा कि वे मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्टालिन को मानते हैं और इन्हीं पर अपने आप को अवस्थित करते हैं। माओ विचारधारा के बारे में पहले चुप्पी साधने के बाद उन्होंने धीरे–धीरे इसकी आलोचना शुरू की और अंत में जाकर इसे गैर सर्वहारा विचारधारा करार दिया।

ख्रुश्चोवी संशोधनवाद के खिलाफ अल्बानिया की पार्टी ने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मिलकर संघर्ष किया था। दुनिया भर के सभी सच्चे कम्युनिस्टों ने इसके साथ ही अवस्थिति ग्रहण की। इसलिए अल्बानिया की पार्टी और अनवर होजा के लिए यह आसान नहीं था कि वे खुलेआम तुरत–फुरत माओ और चीन की पार्टी को संशोधनवादी घोषित कर देते। तब वे खुद अलगाव में पड़ जाते। और यह तब तो और भी होता जब माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी ओर से कोई गलती नहीं कर रहे थे।

माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी समाज के बारे में अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी की गलत धारणाओं का विकास धीरे–धीरे हुआ। वे क्रमशः एक–एक कदम कर आगे बढ़े। 1966 में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति शुरू होने तक वे इक्का–दुक्का रणकौशल के सवालों पर असहमत थे। लेकिन चीन की सांस्कृतिक क्रांति उनकी समझ से परे साबित हुई। यह क्रांति पहले की बनी बनाई सारी धारणाओं को तोड़ती थी। इसके सामने कई सारे मार्क्सवादी असहाय साबित हुए। अनवर होजा के साथ भी यही हुआ। पहले तो वे इसे समझ ही नहीं पाये और चकित रह गये। फिर उन्होंने इसका समर्थन किया। लेकिन यह समर्थन ऊपरी साबित हुआ। वे इसके सारतत्व को नहीं पकड़ पाये।

1971 में चीन द्वारा अमेरिका से सम्बन्धों को सामान्य बनाने के प्रयास से अनवर होजा क्षुब्ध हुए और उन्होंने इसे एक अवसरवादी–संशोधनवादी कदम माना। तब से माओ और चीन के प्रति उनकी दृष्टि तीखी होती गई। 1973 के बाद वे लगभग हर रणकौशल (वैदेशिक संबंधों के मामले में) के सवाल पर चीन से मतभेद रखने लगे और उसकी नीति को अवसरवादी बताने लगे। 1976 की शुरुआत से उन्होंने माओ को संशोधनवादी कहना शुरू किया हालांकि वे चीन को समाजवादी मानते रहे। सितंबर में माओ के मरने के बाद उन्होंने कहना शुरू किया कि चीन में पूंजीवादी फर्नस्थापना हो रही है। लेकिन 1977 का अंत होते होते वे बिलकुल दूसरे छोर पर पहुंच गये। अब उन्होंने कहना शुरू किया कि माओ कभी भी मार्क्सवादी नहीं थे, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी कभी भी कम्युनिस्ट पार्टी नहीं थी और चीन में कभी भी समाजवाद कायम नहीं हुआ।

इस तरह माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी समाज के बारे में पांच–छः सालों में उनकी धारणाओं में गुणात्मक परिवर्तन आ गया। इस बीच या तो माओ बदल गये थे या फिर ये ही। स्वाभाविक है कि 1949 के माओ 1971 में भी वही थे और 1977 में भी वही। परिवर्तन अनवर होजा के दृष्टिकोण में हुआ था।

माओ के बारे में अनवर होजा कहते हैं :

''मेरा विचार है कि ल्यू शाओ–ची माओ के मुकाबले ज्यादा दक्षिणपंथी था और वह दलाल बुर्जुआ का समर्थक था जबकि माओ राष्ट्रीय बुर्जुआ के समर्थक थे'

(Enever Hoxha, Reflections on China, The'8 Nentory' Publishing House, Tirana, 1979, Vol.-II, page-743, जोर मूल में)

''... माओ त्से तुंग मार्क्सवादी–लेनिनवादी नहीं हैं बल्कि एक प्रगतिशील क्रांतिकारी जनवादी हैं और मेरे विचार से यह वह कोण है जहां से उनकी रचनाओं का अध्ययन किया जाना चाहिए।''

(वही, Page-795) '' जब माओ त्से तुंग विचारधारा की बात होती है तो हम पाते हैं कि इसमें एक स्पष्ट लाइन खोजना मुश्किल है क्योंकि, जैसा कि हमने शुरू में कहा था यह विभिन्न विचारधाराओं, अराजकतावाद, ट्राट्स्कीवाद, टीटो, ख्रुश्चोव व 'यूरो कम्युनिस्टों' जैसे आधुनिक संशोधनवादियों से लेकर कुछ मार्क्सवादी मुहावरों का मिश्रण है। इस मिश्रण में कन्फ्रयूशियस, मेंशियस व अन्य व चीनी दार्शनिकों के फराने विचारों की, जिन्होंने माओ त्से तुंग के विचारों के निर्माण, उनके सांस्कृतिक व सैद्वान्तिक विकास को प्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित किया, महत्वपूर्ण मौजूदगी है। यहां तक कि माओ त्से तुंग के विचारों के वे पहलू जो विकृत मार्क्सवाद–लेनिनवाद के रूप में सामने आते हैं उन पर भी 'एशियाई कम्युनिज्म' की छाप लगी होती है और जिसमें राष्ट्रवाद, नस्लवाद और यहां तक कि बौद्व धर्म के तत्व भारी मात्रा में होते हैं। ये अंततः मार्क्सवाद–लेनिनवाद के खुले विरोध में आ खड़े होंगे।''

(Enever Hoxha, Imperialism and Revolution, Internet Edition, ch-6, htm, part-II,Chapter-3, Page-20)

इसी बात को पार्टी द्वारा प्राधिकृत पार्टी इतिहास में इस रूप में कहा गया है :

'' अनवर होजा बताते हैं कि 'माओ त्से तुंग विचारधारा' मार्क्सवाद–लेनिनवाद से गुणात्मक रूप से भिन्न है। यह विचारों का ऐसा मिश्रण है जिसमें मार्क्सवाद से उधार लिए गये विचारों और थीसिसों को कन्फ्रयूशियसवादी, बौद्व, अराजकतावादी, ट्राट्स्कीवादी, टीटोवादी,

खुश्चोववादी और यूरो कम्युनिस्ट विचारों व थीसिसों से मिला दिया गया है और जिसमें राष्ट्रवाद और नस्लवाद के काबिलेगौर तत्व भी हैं।'' (History of the Party of labour of Albania, the '8 Nentory' Pubilishing House, Tirana, 1982, page-582, अनुवाद हमारा)

चीनी समाज के बारे में यह बात कही गई है :

'' इसी कारण से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी विचारधारा, नीति, संघटन या सांगठनिक ढांचे में कभी भी सच्ची सर्वहारा पार्टी नहीं बन पाई, और इसीलिए चीन की बुर्जुआ जनवादी क्रांति समाजवादी क्रांति में विकसित नहीं हो पाई, यह सर्वहारा की सच्ची तानाशाही तक नहीं पहुंच पाई और चीन को सच्चे समाजवादी विकास के रास्ते पर नहीं अग्रसर कर सकी।'' (वही, पृष्ठ–582,अनुवाद हमारा)

'' चीन को भी चीनी क्रांति की विजय और 1 अक्टूबर 1949 को चीन के लोक गणराज्य की घोषणा के बाद इस शिविर (समाजवादी शिविर –लाल सलाम) में शामिल किया गया था। समूचे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की भांति अल्बानिया की श्रम पार्टी ने भी इस घटना को अक्टूबर समाजवादी क्रांति के बाद सबसे बड़ी विजय माना। लेकिन समय ने साबित किया कि चीनी क्रांति बुर्जुआ जनवादी क्रांति की सीमा से परे नहीं जा पाई और चीन समाजवादी विकास के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ा।'' (वही, पृष्ठ–264)

मजे की बात है कि अल्बानिया के इस प्राधिकृत इतिहास में उत्तरी कोरिया, वियतनाम और मंगोलिया तक को समाजवादी माना गया लेकिन चीन को नहीं। यह इतिहास का शानदार फनर्मूल्यांकन था!

लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, हमेशा से तो ऐसा नहीं था। अनवर होजा की नजर में माओ हमेशा से गैर मार्क्सवादी नहीं थे। वस्तुतः उन्होंने 1966 में कहा था :

'' चीन की क्रांति और चीन में समाजवाद के निर्माण के लिए माओ का महान महत्व है। एक मार्क्सवादी के रूप में हम उनका बहुत आदर करते हैं। ...'' (Enever Hoxha, refletions on China, वही] vol-I, Page-223, अनुवाद हमारा)

लेकिन 1976 तक उनकी राय बदल चुकी थी। लगभग दस साल बाद उन्होंने लिखा : ''अतीत में हमारा विचार था कि माओ मार्क्सवादी की तरह सोचते और व्यवहार करते हैं हालांकि हम देखते थे कि कुछ चीजें सही नहीं हो रही हैं। हम सोचते थे कि ये चीजें माओ की कारस्तानी नहीं हैं या कि वे महज रणकौशल हैं लेकिन कुछ समय से मामला हमारे लिए स्पष्ट हो गया हैः माओ मार्क्सवाद–लेनिनवाद के प्रति निष्ठावान नहीं रह गये हैं।'' (वही vol-II, Page-257, अनुवाद हमारा)

ऐसे में यह सहज ही सवाल पैदा होता है कि यदि माओ पहले से ही मार्क्सवादी नहीं थे तो आपने उन्हें मार्क्सवादी क्यों माना? होजा इसका यह जवाब देते हैं :

''किसी न किसी समय, जब यह सच्चाई स्पष्ट हो जायेगी कि माओ क्या थे तब यह सवाल भी उठेगा कि हमने उन्हें 'महान मार्क्सवादी लेनिनवादी' क्यों कहा था? यह सही है कि हमने यह कहा था लेकिन पूर्ण विश्वास के साथ नहीं। तो क्या हम फिर अवसरवादी नहीं थे? नहीं, हमने हमेशा ही चीनी जनता और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी, जिसने स्टालिन की रक्षा की थी, के लिए सबसे अच्छा करने का प्रयास किया था और व्यक्तिगत तौर पर माओ के प्रति हमारी सबसे ज्यादा सदिच्छा थी।'' (वही, Page-263, अनुवाद हमारा)

यह स्पष्ट है कि यह कोई जवाब नहीं है। इससे केवल यही साबित होता है कि होजा या तो पहले से ही अवसरवादी थे या बाद में हो गये क्योंकि माओ तो एक ही थे जिनका बदला हुआ मूल्यांकन किया जा रहा था।

महत्वपूर्ण बात यह है कि माओ का यह फनर्मूल्यांकन उनकी रचनाओं को आधार बनाकर यानी उनकी सैद्वान्तिक अवस्थितियों के अनुसार नहीं किया जा रहा था। असल में वहां तो होजा को खोजने से भी कुछ नहीं मिल रहा था।

''सिद्वान्त में माओ ने मार्क्सवाद के कुछ बुनियादी सिद्वान्तों को स्वीकार किया।उनकी आधिकारिक रचनाओं में ये सिद्वान्त और कुछ अन्य बातें आम तौर पर सही रूप में सूत्रित किये गये हैं।'' (वही, Page-283, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

''...जब हमने माओ की रचनाओं को चार खंडों में पढ़ा तो हमने कुछ निष्कर्ष निकाले और वे निष्कर्ष सकारात्मक थे। वस्तुतः, मैंने लिखा है कि इनमें किसी समस्या का सैद्वान्तिक तौर पर गलत प्रस्तुतीकरण खोज पाना आसान नहीं है।...'' (वही Page-646, अनुवाद हमारा)

''... जिन आधिकारिक दस्तावेजों को हम जानते हैं, उनमें सैद्वान्तिक स्तर पर समस्याओं को सही रूप में प्रस्तुत किया गया है'' (वही, page-675, अनुवाद हमारा)

अनवर होजा और उनकी पार्टी के लिए यह बहुत बड़ा सवाल हो गया कि माओ की रचनाओं में उन्हें ढूंढे से भी कुछ गलत नहीं मिल रहा था। लेकिन तब भी वे लगातार कहे जा रहे थे कि व्यवहार में बहुत सारा अवसरवाद–संशोधनवाद किया गया। लेकिन यह सालों–साल तक कैसे हो सकता है कि कोई व्यवहार में तो संशोधनवाद करे लेकिन उसकी रचनाओं और दस्तावेज में यह अभिव्यक्त न हो? तब अनवर होजा ने यह अटकबाजी की कि माओ की रचनाओं में ढेरों गलतियां रही होंगी जिसे किसी अच्छे सम्पादक ने ठीक कर दिया होगा। वस्तुतः वे लिखते हैंः

''... माओ की रचनाएं इस सर्वशक्तिमान व्यक्ति के व्यवहार से मेल क्यों नहीं खातीं? यह सवाल है, समस्या का अबूझ कारक और इस रहस्य को किसी और तरह नहीं समझाया जा सकता सिवाय इसके कि जब माओ की रचनाओं के इन चार खंडों को संग्रहीत और प्रकाशन के लिए तैयार किया गया तो इन्हें, स्वभावतः, ऐसे योग्य लोगों द्वारा सम्पादित किया गया जो मार्क्सवाद समझते थे और जिन्होंने माओ की संशोधनवादी विच्युतियों को मार्क्सवादी–लेनिनवादी रंग प्रदान कर दिया।'' (वही, page-647, अनुवाद हमारा)

अनवर होजा की अटकलबाजी केवल यहीं तक नहीं रुकती। वह एक से एक ऊंचाइयां ग्रहण करती है। सांस्कृतिक क्रांति को समझने में पूरी तरह असफल रहने के बाद वे इसे विभिन्न गुटों के बीच सत्ता का संघर्ष घोषित कर देते हैं। वे खुले आम घोषित करते हैं कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का पूरा इतिहास सिद्वान्तविहीन सत्ता का संघर्ष है, व्यक्तिगत सत्ता हासिल करने के लिए संघर्ष है :

''इस तरह चीन में, न केवल अभी बल्कि लगातार, सत्ता के लिए सिद्वान्तविहीन संघर्ष चल रहा है। ल्यू शाओ–ची ने सत्ता के लिए लड़ाई लड़ी। माओ ने भी इसी तरह सत्ता के लिए लड़ाई लड़ी और लिन प्याओ, चाओ–एन–लाई, देंग श्याओ–पिंग और अब अंततः हुआ कुआ–फेंग, सभी सत्ता के लिए लड़े हैं। इस सबमें सिद्वान्त व विचारधारा महज आवरण हैं। ...'' (वही, Vol-II, Page-400, अनुवाद हमारा)

किसी भी मार्क्सवादी के लिए सिद्वान्तविहीनता की यह इंतहा है। होजा के इस कथन से चीन के नेताओं की सिद्वान्तविहीनता नहीं बल्कि होजा की सिद्वान्तविहीनता साबित होती है। यह मार्क्सवाद था जिसने इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा पेश की और जिसने दिखाया कि व्यक्तियों के संघर्ष के पीछे कौन सी ऐतिहासिक शक्तियां काम कर रही थीं, ऊपरी तौर पर जो व्यक्तियों के बीच सत्ता के संघर्ष दीखते थे वे कैसे अपने पीछे वर्गों के बीच संघर्ष छिपाये हुए थे, कि व्यक्तियों को नहीं बल्कि वे जिनका प्रतिनिधित्व कर रहे होते हैं, उन्हें देखना चाहिए। इस तरह मार्क्सवाद ने बुर्जुआ व्यक्तिवादी आदर्शवादी अवधारणा को ध्वस्त कर दिया और उसके स्थान पर वर्ग संघर्ष की भौतिकवादी अवधारणा को स्थापित किया।

लेकिन मार्क्सवाद के पैदा होने के सवा सौ साल बाद महान मार्क्सवादी अनवर होजा आते हैं और वे चीन की पार्टी के भीतर चले भीषण संघर्ष को व्यक्तियों का सिद्वान्तविहीन सत्ता का संघर्ष घोषित कर देते हैं। वस्तुतः होजा यदि मार्क्सवाद का क–ख–ग न भूलते तो वे अपने ही फनर्मूल्यांकन को आधार बनाकर इस संघर्ष को दलाल बुर्जुआ और राष्ट्रीय बुर्जुआ के बीच का संघर्ष या इनके तथा सर्वहारा के

बीच का संघर्ष बताते। लेकिन माओ का विरोध उन्हें इस कदर अन्धा बना देता है कि वे न केवल यह सीधा सा तथ्य नहीं देख पाते कि चीन की पार्टी के भीतर का संघर्ष सर्वहारा और बुर्जुआ के बीच का संघर्ष था, बल्कि वे सीधे–सीधे बुर्जुआ व्यक्तिवादी धारणा तक पहुंच जाते हैं। यदि कोई इसी बात को आधार बना कर अल्बानिया की पार्टी के भीतर चलने वाले संघर्षों के बारे में पूछे तो होजा को बगलें झांकने के अलावा कुछ नहीं सूझेगा।

माओ के बारे में इसी तरह की अटकलबाजी होजा ने अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में उनकी भूमिका के संबंध में भी की। उन्होंने यह अटकलबाजी की, कि माओ ने सोचा था कि स्टालिन के मरने के बाद ख्रुश्चोव उन्हें विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन का नेता मान लेगा तथा चीन को बड़ी ताकत बनाने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता और परमाणु बम की तकनीक भी दे देगा। लेकिन जब ख्रुश्चोव ने ऐसा नहीं किया बल्कि खुद ही विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन का नेता बनने लगा तो माओ रुष्ट हो गये और उन्होंने उसके खिलाफ वैचारिक संघर्ष छेड़ दिया।

'' ... माओ ने ख्रुश्चोव से आर्थिक सहायता तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राजनीतिक सहायता का वायदा हासिल किया होगा, साथ ही परमाणु बम की तकनीक सहित सैनिक सहायता का वायदा भी। हम सोचते हैं कि ख्रुश्चोव ने उन्हें यह वायदा किया होगा और कुछ समय तक सभी चीजें ठीक चलती दिखीं। लेकिन ख्रुश्चोव तो 9 धोखेबाज था। हमारा विश्वास है कि माओ की भी अपनी योजना थी। स्टालिन के मरने के बाद और इसके बावजूद कि उन्होंने कहा था कि 'ख्रुश्चोव महान व्यक्ति हैं' माओ (स्वभावतः ही यह सब हमारी मान्यता है) खुद को ख्रुश्चोव से ऊपर रखते थे और सोचते थे कि उन्हें लेनिन के बाद एक 'महान दार्शनिक' के रूप में जगह मिलनी चाहिए और दुनिया की सबसे ज्यादा जनसंख्या वाले देश के नेता के तौर पर भी।'' (वही] Vol-II, Page-410-411, अनुवाद हमारा)

शरलॉक होम्स की लाजवाब खोज पर क्या कहा जा सकता है? इसके पीछे क्या तथ्य हैं? यदि बिना तथ्यों के बुर्जुआ शैली में अटकलबाजियां ही करनी हैं तो कुछ भी किया जा सकता है। लेकिन तब माओ के बारे में ही क्यों? स्टालिन के बारे में क्यों नहीं? आखिर समूचा बुर्जुआ वर्ग स्टालिन के बारे में यही तो करता रहा है। तब फिर उसे भी विश्वसनीय क्यों न माना जाय?

इस शैली के हिसाब से बोल्शेविक पार्टी के भीतर स्टालिन के संघर्ष को, ट्राट्स्की–जिनोवियेव–कामेनेव– बुखारिन–तोम्स्की इत्यादि के खिलाफ संघर्ष को, व्यक्तिगत सत्ता का संघर्ष माना जा सकता है। और इसी तरह बाहरी सम्बन्धों में स्टालिन ने जो कुछ किया उसे संदेह के घेरे में लाया जा सकता है। इन बातों से केवल यही साबित होता है कि होजा की यह पद्वति कितनी गलत है, इसमें रंचमात्र भी मार्क्सवाद नहीं है और यह पलट कर उन्हीं के गले पड़ जाती है क्योंकि इसी तरह उनके बारे में भी अटकलबाजियां की जा सकती हैं। अटकलबाज चाहे और कुछ भी हो, मार्क्सवादी नहीं हो सकता।

अटकलबाज अनवर होजा ने माओ की रचनाओं में कुछ दिक्कततलब न पाकर भी उन्हें गैर मार्क्सवादी साबित करने के लिए उन पर क्या–क्या आरोप लगाये? वे ये थे :

माओ का कहना है कि राष्ट्रीय जनवादी क्रांति में किसान नेतृत्वकारी शक्ति होंगे, इसी का दूसरा रूप यह है कि देहात शहरों को घेरेंगे, माओ ने सैकड़ों फूलों को खिलने दो और सौ विचार शाखाओं को टकराने दो का नारा पार्टी के लिए बुलंद किया, माओ ने एकाश्मिक पार्टी के बदले यह कहा कि पार्टी में दो या दो से ज्यादा लाइनें होनी चाहिए, माओ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का नारा दिया जो न महान थी, न सर्वहारा, न सांस्कृतिक और न ही क्रांति, माओ ने अपनी व्यक्ति पूजा को प्रोत्साहित किया, माओ ने पूंजीपति वर्ग और अन्य पार्टियों के प्रति उदारवादी रुख अख्तियार किया, माओ ने स्टालिन की निंदा की, माओ ने अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रति नरम रुख अपनाया और यही यूगोस्लाविया के प्रति किया और अंत में यह कि उन्होंने वर्ग सहयोगवादी तीन दुनिया का सिद्वान्त प्रतिपादित किया।

पहली नजर में देखने से ही यह लगता है कि यह माओ का विद्रूपीकरण है और इन आरोपों के समर्थन में प्रमाण नहीं दिया जा सकता। इस तरह के विद्रूपीकरण के आधार पर तो मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन को भी संशोधनवादी, पूंजीपति वर्ग का समर्थक ठहराया जा सकता है, स्टालिन की तो बात ही क्या। वस्तुतः भारत के एक सुधारवादी समाजवादी मधु लिमये ने अपने एक अखबारी लेख में मार्क्स को गुलामी व्यवस्था का समर्थक साबित करने की कोशिश की थी।

आइये, इन आरोपों को एक–एक कर लें। अनवर होजा का कहना है कि माओ राष्ट्रीय जनवादी क्रांति में मजदूर वर्ग के बदले किसान को नेता मानते हैं। इस सम्बन्ध में सच्चाई क्या है? हम माओ की संकलित रचनाओं का पहला खंड खोलते हैं और उसका पहला ही लेख देखते हैं–'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण'। इसमें यह लिखा हुआ है :

'' ... औद्योगिक सर्वहारा वर्ग हमारी क्रांति की नेतृत्वकारी शक्ति है। अर्ध–सर्वहारा वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की सभी श्रेणियां हमारे सबसे नजदीकी दोस्त हैं। ...'' (माओ त्से तुंग की संकलित रचनाएं, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पीकिंग, 1971,खण्ड–1,पृष्ठ–15)

यह एकदम स्पष्ट है और यहां संदेह, भ्रम या किसी अन्य व्याख्या की कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन हो सकता है माओ के विचार बाद में बदल गये हों। उपरोक्त लेख 1926 में लिखा गया था। 1939 में 'चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी' लेख में माओ ने यह लिखा :

''अतएव अपनी चन्द लाजमी कमजोरियों के बावजूद, मिसाल के तौर पर अपनी थोड़ी संख्या (किसानों के मुकाबले), अपनी कम उम्र (पूंजीवादी देशों के सर्वहारा के मुकाबले) और अपनी शिक्षा के नीचे स्तर (पूंजीपति वर्ग के मुकाबले) के बावजूद, चीनी सर्वहारा वर्ग चीनी क्रांति की मूल प्रेरक शक्ति है। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व बिना चीनी क्रांति कभी भी सफल नहीं हो सकती ... ।'' (वही, खण्ड–2,पृष्ठ–573)

इस तरह संदेह की कोई गुंजाइश नहीं बचती। यह अनवर होजा की ओर से मनगढ़न्त बात है कि माओ ने किसानों को चीन की क्रांति की नेतृत्वकारी शक्ति कहा था।

चीन में क्रांति की नेतृत्वकारी शक्ति मजदूर वर्ग था और क्रांति का नेतृत्व उसकी पार्टी, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी वह पार्टी जिसे स्टालिन और कौमिंटर्न की मान्यता प्राप्त थी और स्टालिन के पूरे काल में जिस पर 10 कोई सवाल नहीं उठा। हां, चीन में मुख्य लड़ाकू शक्ति किसान थे। जैसा कि सभी औपनिवेशिक, अर्ध–औपनिवेशिक देशों में था। जैसा कि हम देख चुके हैं स्वयं अल्बानिया में राष्ट्रीय मुक्ति युद्व में मुख्य लड़ाकू शक्ति किसान थे। वहां किसान आबादी का 90 प्रतिशत थे और मुक्ति सेना में भी वे 90 प्रतिशत थे।

वैसे इन आधारों पर बात करनी हो तो खुद अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति इससे ज्यादा कमजोर थी। वहां आधुनिक औद्योगिक मजदूर वर्ग अभी पैदा ही हो रहा था। इसलिए वहां क्रांति का नेतृत्व सीधे मजदूर वर्ग नहीं बल्कि उसकी पार्टी कर रही थी। इसके मुकाबले चीन की पार्टी का निर्माण औद्योगिक मजदूर वर्ग में हुआ था और मजदूर वर्ग सीधे क्रांति के नेतृत्व में था। समूची क्रांति के दौरान चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का आधार मजदूर वर्ग में बना रहा।

चीन की क्रांति के दौरान देहातों से शहरों को घेरने की माओ की रणनीति को, किसानों को नेतृत्वकारी मानने के रूप में देखना हद दर्जे का विद्रूपीकरण है। चीन की क्रांति अपने विकासक्रम में उस रास्ते पर गई जिसे पहले न तो स्टालिन ने देखा था और न ही कौमिन्टर्न ने। चीन के अलग–अलग क्षेत्रों में, बड़े–बड़े शहरों से दूर देहाती क्षेत्रों में आधार क्षेत्र कायम हुए। आगे इन क्षेत्रों का विकास हुआ और यह संभव हुआ कि पहले छोटे–छोटे शहरों को और फिर बड़े शहरों को मुक्त कराकर उनमें अपनी सत्ता कायम की जाय। माओ

ने चीन की क्रांति इस विशिष्टता को पकड़ा और यह सूत्रित किया कि चीन की क्रांति दीर्घकालीन लोकयुद्व का रूप धारण करेगी और इसमें एक लम्बे समय में पहले देहाती क्षेत्रों में आधार क्षेत्र कायम करते हुए फिर शहरों को मुक्त कराया जायेगा। चीनी क्रांति वस्तुतः इसी रास्ते से सफल भी हुई।

माओ की इस रणनीति में यह कहीं नहीं था कि किसान वर्ग क्रांति का नेतृत्व करेगा। यदि यह माना जाय कि देहात में किसान रहते हैं और शहर में मजदूर तथा देहातों से शहरों को घेरने का मतलब है किसानों द्वारा मजदूरों को नेतृत्व प्रदान करना तो इस तर्कणा का कुछ नहीं किया जा सकता। इस मामले में केवल इतना कहा जा सकता है कि यह तर्क स्वयं होजा के गले में चक्की की तरह लटक जायेगा क्योंकि अल्बानिया में भी मुक्ति युद्व देहात से ही शुरू हुआ था– छापामार युद्व के रूप में।

'सौ फूलों को खिलने दो और सौ विचार शाखाओं को टकराने दो' का नारा माओ ने चीन में एक खास दौर में दिया था। यह न तो चीन में हमेशा के लिए दिया गया नारा था और न ही यह पार्टी के भीतर विभिन्न लाइनों को प्रोत्साहन देने के लिए। खुद माओ के शब्दों में :

'' 'सौ फूल खिलने दो और सौ विचार शाखाओं में होड़ होने दो' तथा 'दीर्घकालीन सह–अस्तित्व और पारस्परिक निरीक्षण'– ये नारे आखिर कैसे पेश किये गये? ये नारे चीन में मौजूद विशिष्ट स्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस तथ्य को स्वीकार करने के आधार पर कि समाजवादी समाज में अब भी विभिन्न प्रकार के अंतर्विरोध मौजूद हैं और देश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास तेज करने की फौरी आवश्यकता के अनुरूप पेश किये गये हैं। 'सौ फूल खिलने दो और सौ विचार शाखाओं में होड़ होने दो' की नीति कला व विज्ञान को प्रोत्साहन देने तथा हमारे देश में एक समृद्व समाजवादी संस्कृति का विकास करने की नीति है। ...''
(माओ, जनता के बीच अंतर्विरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में, माओ त्से तुंग की संकलित रचनाएं, खण्ड –5,प्रोग्रेसिव पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001, पृष्ठ .383)

माओ की यह बात 1957 की है। माओ के इस कथन से स्पष्ट है कि इस नीति का क्या मतलब था। लेकिन होजा उसका वह मतलब बताते हैं जो कतई नहीं था। यही नहीं, कुछ समय बाद जब पूंजीपति वर्ग ने इस नीति से बेजा फायदा उठाना शुरू कर दिया तो इस नीति को बदल दिया गया।

इसी तरह होजा का यह कहना कि माओ ने यह सिद्वान्त प्रस्तुत किया था कि कम्युनिस्ट पार्टी में दो या दो से ज्यादा लाइनें होनी चाहिए, एकदम मनगढ़न्त बात है। इसी तरह यह भी कहना गलत है कि माओ ने पार्टी में ढेरों गुटों के अस्तित्व को इजाजत दी। पार्टी के भीतर दो लाइनों के संघर्ष के सवाल पर अगले हिस्से में विस्तार से विचार किया जायेगा। फिलहाल तो इतना ही करने की जरूरत है कि होजा के एकाश्मिक पार्टी के पक्षधर होने के बावजूद उनकी पार्टी में लगातार विरोधी गुट पैदा होते रहे और 1970 के दशक में तो उन्हें एक बड़ा शुद्विकरण अभियान ही चलाना पड़ा। और यह इस सबके बावजूद कि उनकी पार्टी का आधिकारिक इतिहास बार–बार यह कहता है कि उनकी पार्टी में इस्पाती एकता है। विभिन्न समयों पर पार्टी में इस्पाती एकता होती थी लेकिन तभी अचानक पार्टी में पार्टी विरोधी गुट पैदा हो जाते थे।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के बारे में भी अगले हिस्से में विचार किया जायेगा। सच्चाई यह है कि अनवर होजा न तो समाजवादी समाज के चरित्र को सही तरह से समझ सके, न ही इसमें पूंजीवाद की फनर्स्थापना को। इसीलिए वे चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को भी नहीं समझ सके। उन्होंने अपने देश में चीनी सांस्कृतिक क्रांति से सीख कर कुछ लागू करने का प्रयास किया लेकिन उसमें उसका सारतत्व गायब था।

माओ की व्यक्ति पूजा को प्रोत्साहित करने की बात और स्टालिन के सवाल पर अगले हिस्से मे बात की जायेगी। यहां हम पूंजीपति वर्ग और अन्य पार्टियों के प्रति माओ और चीन की पार्टी के रुख के सवाल को लेंगे।

चीन में नवजनवादी क्रांति की सफलता और चीनी गणराज्य की स्थापना के साथ ही दलाल पूंजीपति पर हमला बोल दिया गया था। उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। लेकिन राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के प्रति यह नीति नहीं अपनाई गई। उसके प्रति वह नीति अपनाई गई जिसे मार्क्स और लेनिन ने 'खरीद लेने' की नीति कहा था। 1952 में माओ द्वारा मजदूर वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के बीच अंतर्विरोध को प्रधान अंतर्विरोध घोषित करने (खण्ड– 5ए पृष्ठ–60) के बावजूद यही नीति अपनाई गई कि उसकी सम्पत्ति का धीमे–धीमे राष्ट्रीयकरण किया जाय तथा उसे उसकी पूंजी पर निश्चित ब्याज अदा किया जाय और उसे उद्यम में प्रबन्धन का काम सौंपा जाय। ब्याज एक निश्चित समय तक अदा किया जाना था।

चीन में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के प्रति यह नीति इसलिए अपनाई जा सकी क्योंकि मजदूर वर्ग उसके मुकाबले में बहुत मजबूत था। यह नीति वही थी जिसे एक निश्चित स्थिति में अपनाने की इजाजत मार्क्स और लेनिन ने भी दी थी।

इसी तरह कम्युनिस्ट पार्टी के अलावा अन्य पार्टियों को इजाजत इसी नीति के तहत मिली थी। ये पार्टियां नव जनवादी क्रांति के दौरान क्रांति के संयुक्त मोर्चे में शामिल थीं। समाजवादी निर्माण के दौरान उनकी इस निर्माण से सहमति थी और वे क्रमशः समाजवादी समाज में समाहित होती जा रही थीं। कम्युनिस्ट पार्टी के मुकाबले इनकी स्थिति बहुत कमजोर थी और वे समाजवादी रूपान्तरण के लिए खतरा नहीं पैदा करती थीं। चीन में इन पार्टियों की वही स्थिति थी जो अल्बानिया में जनवादी मोर्चे की थी।

बुर्जुआ वर्ग और इन पार्टियों के प्रति यह रुख माओ को अवसरवादी या उदारवादी नहीं साबित करता। उलटे उन्हें कहीं ज्यादा द्वन्द्ववादी साबित करता है।

होजा ने माओ पर वैदेशिक सम्बन्धों में अवसरवाद–संशोधनवाद का आरोप लगाया। खासकर अमेरिका व यूगोस्लाविया के साथ सम्बन्धों में। इस पर भी हम बाद में विचार करेंगे। इसी तरह होजा ने माओ पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने तीन दुनिया का वर्ग सहयोगी सिद्वान्त प्रस्तावित किया तथा इस तरह मजदूर वर्ग और बाकी जनता को क्रांति से विमुख होकर अपने शासक वर्ग से मिल जाने की बात की। यह भी एकदम मनगढ़न्त बात है। कम्युनिस्ट पार्टी की वैश्विक रणनीति या समाजवादी राज्य की संपूर्ण विदेश नीति के तौर पर तीन दुनिया का सिद्वान्त देंग सियाओ–पिंग का सिद्वान्त है। उसी ने इस सिद्वान्त को दुनिया में प्रचारित प्रसारित किया। यह उसके संशोधनवाद का हिस्सा था। माओ ने केवल इतना कहा था कि अभी–अभी आजाद हुए देशों को साम्राज्यवादी देशों के पंजे से बचाने के लिए समाजवादी देशों को उनकी मदद करनी चाहिए। इस तरह दोनों प्रमुख साम्राज्यवादी देशों– सोवियत संघ और अमेरिका के बाकी पूंजीवादी–साम्राज्यवादी देशों से अंतर्विरोध हैं और समाजवादी देशों तथा तीसरी दुनिया (एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के नव आजाद देशों) को इसका फायदा उठाना चाहिए। इस नीति में कहीं भी कुछ गलत नहीं था। चीन के समाजवादी राज्य का यह रणकौशल गलत नहीं था। लेकिन यदि इस रणकौशल को कम्युनिस्ट पार्टी की वैश्विक रणनीति तथा समाजवादी राज्य की संपूर्ण वैदेशिक नीति घोषित कर दिया जाय तो यह जरूर गलत हो जायेगा। तब यह वैश्विक क्रांति का परित्याग हो जायेगा और यही देंग स्याओ पिंग ने किया। लेकिन इस पाप को माओ के मत्थे मढ़ना एकदम गलत है।

माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी समाज के बारे में अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी के ये आरोप आधारहीन और गलत हैं। इनके समर्थन में न तो तथ्य दिये जा सकते हैं और न तर्क। अगर इसी तरह की अटकलबाजियां करनी हों और आधारहीन आरोप लगाने हों तो इस तरह से लेनिन, स्टालिन को भी गैर मार्क्सवादी बताया जा सकता है और बोल्शेविक पार्टी को संशोधनवादी पार्टी।

और वास्तव में इतिहास में ऐसा हुआ है। ट्राट्स्की ने स्टालिन को क्रांति का गद्दार बताया और सोवियत संघ को समाजवादी देश के बदले एक पतित मजदूर राज घोषित किया। इसी तरह दूसरे इंटरनेशनल के सूरमाओं ने लेनिन को पेटी बुर्जुआ उग्रवादी, ब्लांकीवादी कहा और सोवियत राज को पेटी बुर्जुआ तानाशाही। इन्होंने कभी भी रूस की बोल्शेविक क्रांति को स्वीकार नहीं किया। लेनिन–स्टालिन के ये आलोचक अनवर होजा जैसे लोगों से इस मामले में अच्छे थे कि उन्होंने शुरू से ही वही अवस्थिति ग्रहण की। ऐसा नहीं हुआ कि बीस साल तक इन्हें मार्क्सवादी कहने के बाद उन्होंने इन्हें संशोधनवादी कहना शुरू किया हो।

अनवर होजा 1940 के दशक से 1975 तक माओ को मार्क्सवादी और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी मानते रहे। वे मुक्ति के बाद के चीन को समाजवादी देश भी मानते रहे। कम से कम 1956 से तो वे चीन की पार्टी के साथ घनिष्ठ संश्रय में थे और इसीलिए उनके पास सूचनाओं–जानकारियों का अभाव नहीं था। इसलिए वे यह भी नहीं कह सकते कि वे गैर जानकारी में गलत अवस्थिति ग्रहण किये रहे, जानकारी के अभाव में एक संशोधनवादी को मार्क्सवादी मानते रहे।

सही बात यह है कि उन्होंने 1973 से 1977 के बीच अपनी अवस्थिति बदली। और यह अवस्थिति उसी मात्रा में बदलती गई जिस मात्रा में चीन की पार्टी के साथ इनके सम्बन्ध खराब होते गये। बात यह नहीं है कि माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी समाज के चरित्र के बारे में इनकी धारणाओं में परिवर्तन के कारण इनके चीन से संबंध खराब हुए। 1977 तक इन्होंने अपनी परिवर्तित होती धारणाओं को गुप्त ही रखा था। खुलेतौर पर तो वे पहली वाली अवस्थिति लिए रहे। चीनी राज के वैदेशिक सम्बन्धों के मामले में रणकौशल से इनकी असहमति के कारण इनके चीन से संबंध खराब होते गये और इनकी धारणाओं में परिवर्तन होता गया। इस तरह देखा जाय तो धारणाओं में यह परिवर्तन इनकी वैचारिक कमजोरी (सांस्कृतिक क्रांति को न समझ पाने) तथा गलत संकीर्णतावादी रणकौशल के चलते ही नहीं हुआ बल्कि इसके पीछे राष्ट्रवादी जमीन भी थी। वे चीन के वैदेशिक संबंधों को अपनी राष्ट्रवादी जमीन से देखते थे और वहां से उसे गलत या सही मानते थे। इसी तरह चीन से लगातार संबंध खराब होते जाने से उन्हें जो आर्थिक कठिनाइयां झेलनी पड़ी उसने भी उन्हें चीन का फनर्मूल्यांकन करने की ओर ढकेला।

महत्वपूर्ण बात यह है कि फनर्मूल्यांकन के बाद पहुंचे एकदम नये नतीजों के लिए इन्होंने कभी आत्मालोचना नहीं की। पूरे मामले पर लीपापोती की। माओ पर हमेशा सही होने का दंभी होने वाला आरोप लगाने के बाद भी अनवर होजा या अल्बानिया की पार्टी ने अपनी कोई गलती नहीं मानी। पार्टी के इतने आधिकारिक इतिहास में पार्टी या होजा की कोई भी गलती दर्ज नहीं है। कठिनाइयों के लिए हमेशा पार्टी विरोधी गुटों को जिम्मेदार ठहराया गया।

माओ व चीन की पार्टी को कलंकित करने की अपनी हड़बड़ी में होजा यह भी याद नहीं रख पाये कि उनका यह फनर्मूल्यांकन स्टालिन और कौमिन्टर्न पर भी कालिख पोत देता है। स्टालिन के जिन्दा रहने तक स्टालिन, कौमिन्टर्न और कौमिन्फार्म ने माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को कम्युनिस्ट के बतौर मान्यता दी। यह तब जब 1948 में यूगोस्लाविया को राष्ट्रवादी भटकावों के लिए बिरादरी बाहर कर दिया गया था। यही नहीं, 1950 में कौमिन्फार्म ने चीन की नव जनवादी क्रांति को जनता के जनवादी राज्य का एक रूप बताते हुए औपनिवेशिक और अर्ध–औपनिवेशिक देशों के लिए नजीर के तौर पर पेश किया। क्या स्टालिन और कौमिन्टर्न, कौमिन्फार्म की मार्क्सवादी दृष्टि इतनी कमजोर थी कि वे माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के असली चरित्र को नहीं पहचान पाये? सच तो यह है कि दृष्टि अनवर होजा की ही कमजोर थी और बाद में वह इतनी ज्यादा खराब हो गई कि उन्हें मार्क्सवादी, गैर मार्क्सवादी नजर आने लगे। उनकी मार्क्सवादी दृष्टि को राष्ट्रवाद का मोतियाबिन्द लग गया।

III महत्वपूर्ण विचारधारात्मक सवाल और अनवर होजा

अब हम कुछ महत्वपूर्ण विचारधारात्मक सवालों को लेंगे और देखेंगे कि कैसे अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी इन सवालों पर सही अवस्थिति नहीं ग्रहण कर सके या कि सोवियत संघ में पूंजीवाद की फनर्स्थापना से जो महत्वपूर्ण सवाल उठ खड़े हुए थे वे उनसे निपटने में नाकामयाब रहे। यही नहीं, माओ ने इन सवालों का जो सही समाधान पेश किया उन्हें वे आत्मसात नहीं कर पाये और स्टालिन को दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए गलत अवस्थितियों तक जा पहुंचे। ऐसा पहली बार नहीं हुआ। साम्राज्यवाद के उदय के साथ जो नये सवाल उठ खड़े हुए थे उन्हें हल करने में दूसरे इंटरनेशनल के स्वनामधन्य नेता नाकामयाब रहे थे और इन सवालों का सही समाधान ढूंढने वाले लेनिन का विरोध करते–करते व स्वयं को रूढ़िवादी मार्क्सवादी बताते–बताते वे संशोधनवादी हो गये। काउत्स्की–प्लेखानोव अंत में वहीं पहुंच गये जहां उनके काफी पहले कोनार्ड स्मिथ और एडवर्ड बर्नस्टीन जैसे संशोधनवादी पहुंचे थे। जीवन की द्वन्द्वात्मक गति ने रूढ़िवादी मार्क्सवादियों को संशोधनवादी अवस्थितियों पर पहुंचा दिया। चीज बिलकुल अपने विपरीत में बदल गई। अनवर होजा के साथ भी यही हुआ। अपने को दृढ़तापूर्वक रूढ़िवादी स्टालिनपंथी बताते हुए, दृढ़तापूर्वक स्टालिन पर खड़े हुए वे अन्त में वहीं पहुंच गये जहां ख्रुश्चोव एण्ड कम्पनी पहुंचे थे। ख्रुश्चोव की तरह उन्होंने भी माओ को पेटी बुर्जुआ क्रांतिकारी और संशोधनवादी कहना शुरू कर दिया। वे माओ पर वही आरोप लगाने लगे जो एक समय ख्रुश्चोव ने लगाये थे (विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन का नेतृत्व हड़पने की कोशिश करने, परमाणु बम हथियाने इत्यादि)। सोवियत पार्टी के 14 जुलाई 1963 के पत्र में बहुत सारे ऐसे आरोप हैं जो बाद में अनवर होजा ने चीन की पार्टी पर लगाये।

क. पूंजीवाद की फनर्स्थापना

स्टालिन के मरने के बाद ख्रुश्चोव एण्ड कम्पनी ने जब सोवियत संघ में पूंजीवाद की फनर्स्थापना कर दी तब दुनिया के सभी कम्युनिस्टों के सामने यह बड़ा सवाल खड़ा हो गया कि इस परिघटना को समझा जाय जिससे भविष्य में इससे बचा जा सके। चीन–अल्बानिया जैसे समाजवादी देशों के लिए तो यह तात्कालिक महत्व का सवाल था क्योंकि उनके यहां यह खतरा कभी भी पैदा हो सकता था। माओ ने इस सवाल से जूझकर एक समाधान पेश किया जो 'महान बहस' की नवीं टिप्पणी से लेकर सांस्कृतिक क्रांति की धारणा तक विकसित हुआ।

अनवर होजा भी इस सवाल से टकराये। उन्होंने इसका क्या उत्तर दिया? उनके हिसाब से सोवियत संघ में पूंजीवाद की फनर्स्थापना क्यों हुई? अनवर लिखते हैं :

''यही सोवियत संघ में भी हुआ लेनिन और स्टालिन की बोल्शेविक पार्टी, जिसने क्रांति व समाजवाद के निर्माण की महान विजय हासिल की थी, भीतर से ध्वस्त कर दी गई। स्टालिन की सही अवस्थिति तथा बोल्शेविक पार्टी के राजनीतिक और विचारधारात्मक काम के बावजूद छिपे हुए संशोधनवादियों ने क्षण भर में सत्ता छीन ली और अपेक्षाकृत थोड़े समय में सोवियत संघ को एक समाजवादी देश से पूंजीवादी देश में बदल दिया और

अब पूंजीवादी बुर्जुआ वर्ग के एक नये संस्तर को पैदा कर दिया है जो स्वयं को सैनिक ताकत और राज्य सुरक्षा सेवा पर आधारित करता है।'' (Enever Hoxha, Reflections on China, ogh] Vol-II, Page-758)

अल्बानिया का आधिकारिक इतिहास कहता है:

''सोवियत संघ में पार्टी कार्यकर्ता मजदूर वर्ग के नेतृत्व और नियंत्रण से बाहर निकल गये, क्रांतिकारी भावना खो दी और बुर्जुआ बन गये, इन्होंने पार्टी और वर्ग पर अपना कानून थोप दिया और प्रतिक्रांति कर डाली। इससे अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने कार्यकर्ताओं के ऊपर पार्टी के नियंत्रण और निर्देशन तथा वर्ग के नियंत्रण और निर्देशन का महत्वपूर्ण सबक निकाला। अनवर होजा सिखाते हैं: 'कार्यकर्ता... को प्रथमतः तो मजदूर वर्ग की पाठशाला में शिक्षित किया जाना चाहिए। यदि वह वर्ग की पाठशाला से नहीं गुजरा है तो वह किसी लायक नहीं है। यदि वह वर्ग की शिक्षा और भावना से लैस नहीं हुआ है तो अवसर मिलने पर, देर सबेर वह पार्टी और जनता पर सवारी गांठने की ओर जा सकता है।''

(वही, Page- 523-524, अनुवाद हमारा)

''जैसा कि कामरेड अनवर होजा अपनी रचनाओं मे बताते हैं, ख्रुश्चोवी संशोधनवादियों ने सोवियत संघ में सत्ता हड़प ली और विश्व पूंजीवाद की इस संघर्ष में बहुत बड़ी सेवा की।''

''इसके लिए ख्रुश्चोव गुट लम्बे समय से चुपके–चुपके काम कर रहा था लेकिन केवल स्टालिन की मृत्यु के बाद ही इसने बोल्शेविक पार्टी के मार्क्सवादी–लेनिनवादी रास्ते के खिलाफ पूरी ताकत से काम किया, उस बोल्शेविक पार्टी के जिसने अक्टूबर क्रांति और समाजवादी निर्माण की विजय हासिल की थी। इसने इसे एक नये संशोधनवादी, प्रतिक्रांतिकारी, सामाजिक साम्राज्यवादी रास्ते पर डाल दिया और इस तरह सर्वहारा की तानाशाही और समाजवादी व्यवस्था को खत्म कर दिया तथा पूंजीवाद की फनर्स्थापना कर दी। इसके लिए ख्रुश्चोवी संशोधनवादियों ने फासिज्म के ऊपर सोवियत संघ की विजय की मदहोशी, कम्युनिस्ट पार्टी में सतर्कता में ढील–ढाल, कम्युनिस्टों और मेहनतकश जनता की क्रांतिकारी शिक्षा के लिए पार्टी के विचारधारात्मक–राजनीतिक काम में कमी, पार्टी और राज्य तंत्र में नौकरशाही के विकास, पार्टी के सिद्वान्तों व नियमों को लागू करने में औपचारिकतावाद, इस खतरनाक धारणा के पैदा होने का, कि केवल मुखिया, केवल नेतृत्व सब कुछ जानता है, करता है और सब कुछ सुलझाता है जबकि पार्टी के आम कार्यकर्ताओं और मेहनतकश जनता का काम है निर्देशों का पालन करना, उत्पादक शक्तियों के मुकाबले उत्पादन संबंधों के पिछड़ेपन, नेतृत्वकारी कार्यकर्ताओं व उच्च पढ़े–लिखे हिस्से के पतन इत्यादि का इस्तेमाल किया। (वही, पृष्ठ–580, अनुवाद हमारा)

यहां यह दृष्टव्य है कि अनवर होजा ख्रुश्चोव जैसे तत्वों के पैदा होने की जड़ में नहीं जा पाते। सोवियत संघ के सम्बन्ध में यह सवाल पैदा होता है कि इतने तीखे संघर्षों, पार्टी विरोधी गुटों के इतने सफाये के बावजूद ऐसा कैसे हो गया कि ख्रुश्चोव जैसे लोग पैदा हुए और उन्होंने स्टालिन के मरते ही सत्ता पर कब्जा कर वहां पूंजीवाद की फनर्स्थापना कर दी? सोवियत समाज के भीतर इसकी जड़ें कहां थीं? अनवर होजा नहीं देख पाते कि पूंजीवाद की फनर्स्थापना के जो कारण वे बताते हैं वे सब प्रकारान्तर से स्टालिन की आलोचना हैं। यदि स्टालिन शत–प्रतिशत सही थे तो वे गलतियां कैसे हुईं जो होजा गिनाते हैं? उनके लिए जिम्मेदार कौन था? यदि होजा और उनकी पार्टी इस सवाल को उठाते तो वे समस्या की जड़ तक पहुंच जाते।

माओ इन परिणामों तक सीमित न रह कर समस्या की जड़ तक गये और उन्होंने फनर्स्थापना के भौतिक कारणों को पहचाना। उन्होंने बताया कि पूंजीवाद से कम्युनिज्म तक का काल एक बहुत लम्बा काल होता है। इस काल में जो 14 समाजवादी समाज कायम होता है उसमें वर्ग, वर्ग संघर्ष बने रहते हैं। पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच संघर्ष बना रहता है। पूंजीपति वर्ग समाज को पीछे ले जाने का प्रयास करता है और कभी–कभी इसमें सफल हो जाता है। यदि वह सफल हो जाता है तो समाजवादी समाज में पूंजीवाद की फनर्स्थापना हो जाती है।

इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि समाजवाद की स्थापना के बाद भी इसके भीतर से फनर्स्थापना का खतरा मौजूद होता है। स्टालिन सोचते थे कि सोवियत संघ के समाजवाद को खतरा केवल बाहर से, साम्राज्यवाद से और उसके एजेन्टों से है। माओ ने बताया कि समाजवादी समाज की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसमें इसका खतरा मौजूद होता है। उन्होंने कहा :

''समाजवादी समाज एक अपेक्षाकृत सुदीर्घ अवधि होती है। समाजवाद की ऐतिहासिक अवधि में वर्ग, वर्ग अंतर्विरोध, वर्ग संघर्ष, समाजवादी और पूंजीवादी रास्तों के बीच संघर्ष तथा पूंजीवादी फनर्स्थापना के खतरे अभी मौजूद होते हैं। इन संघर्षों की दीर्घकालिक और जटिल प्रकृति को हमें पूरी तरह अवश्य समझना चाहिए। हमें सतर्क रहना चाहिए। हमें समाजवादी शिक्षा संचालित करनी चाहिए। हमें वर्ग अंतर्विरोधों और वर्ग संघर्ष को ठीक से समझना और संचालित करना होगा, हमें अपने शत्रुओं के साथ अपने अंतर्विरोधों तथा जनता के आपसी अंतर्विरोधों के बीच के फर्क को ठीक से समझना और तद्नुरूप संचालित करना होगा। अन्यथा, हमारा समाजवादी देश गलत रास्ते पर जाकर पतित हो जायेगा तथा पूंजीवाद की फनर्स्थापना हो जायेगी। अब से हमें हर साल, हर महीने, और हर दिन इस पर चर्चा करनी होगी ताकि हम इस मुद्दे की तथा एक मार्क्सवादी–लेनिनवादी लाइन की स्पष्टतर समझ हासिल करते जायें।'' (राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्वान्त, खंड.2 में उद्वृत, राहुल फाउन्डेशन, लखनऊ, 2000, पृष्ठ,16–17)

इस तरह फनर्स्थापना का कारण अधिरचना के क्षेत्र में की गई कुछ गलतियां नहीं हैं। इसका कारण केवल नेताओं पर जनता के नियंत्रण का अभाव, नौकरशाही तथा कार्यकर्ताओं का पतन नहीं था। इसके कहीं गहरे कारण थे। उत्पादन के साधनों के सामूहिक हो जाने मात्र से कोई समाज कम्युनिज्म तक नहीं पहुंच सकता। इसके बाद भी समाज में वर्ग और वर्ग संघर्ष बने रहते हैं और इसलिए समाज को आगे ले जाने के लिए निरंतर विचारधारात्मक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मोर्चों पर क्रांति की जरूरत बनी रहती है। इसे अनवर होजा नहीं समझ पाते और लक्षण को रोग समझ लेते हैं।

ख. समाजवादी समाज का चरित्र

जैसा कि ऊपर के उद्वरण से स्पष्ट है माओ समाजवादी समाज को पूंजीवाद और कम्युनिज्म के बीच सुदीर्घ संक्रमणकालीन काल मानते हैं जिसमें वर्ग और वर्ग संघर्ष बने रहते हैं, पूंजीवादी रास्ते और समाजवादी रास्ते के बीच संघर्ष बना रहता है और समाज के पीछे लौट जाने की संभावना बनी रहती है। इस समाज में एक हद तक माल, मुद्रा और इससे जनित अन्य सम्बन्ध बने रहते हैं। शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम के बीच, मजदूर और किसान के बीच तथा देहात और शहर के बीच भेद बना रहता है। समाजवाद में यह भौतिक आधार होता है जिससे पूंजीवादी तत्व और पूंजीवादी विचारधारा लगातार पैदा होती रहती है। इस संबंध में अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी क्या कहते हैं :

'' इस बीच चीनी नेतृत्व वर्ग संघर्ष के मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्वान्त के खिलाफ विचार प्रचारित कर रहा था। 'सौ फूलों को खिलने दो, सौ विचार शाखाओं को टकराने दो' के सिद्वान्त के साथ, जो कि वर्ग संघर्ष का खुला निषेध है, इसने इस थीसिस का समर्थन किया कि समाजवाद के आर्थिक आधार के निर्माण के साथ बुर्जुआ एक वर्ग के रूप में समाप्त नहीं हो जाता बल्कि पूंजीवाद से कम्युनिज्म में संक्रमण के पूरे काल में मजदूर वर्ग के साथ–साथ मौजूद रहता है।

''...चौथी कांग्रेस ने घोषित किया कि शहर और देहात दोनों में समाजवाद का आर्थिक आधार निर्मित कर लिया गया है। समाजवादी क्रांति के विकास में इस ऐतिहासिक विजय के साथ शोषक वर्गों का एक वर्ग के रूप में खात्मा हो गया है।

''समाजवादी समाज के पूर्ण निर्माण में वर्ग संघर्ष के मार्क्सवादी सिद्वान्त की सही समझ और क्रांतिकारी व्यवहार के महत्व को देखते हुए कांग्रेस ने समाजवाद में वर्ग संघर्ष के संबंध में अपनी सही अवस्थिति को स्पष्ट रूप में परिभाषित करना जरूरी माना। कांग्रेस ने जोर दिया : **'पार्टी का मानना है कि शोषक वर्गों के खात्मे के बाद भी वर्ग संघर्ष समाज की एक मुख्य चालक शक्ति बना रहता है। ....जैसा कि हमारे देश के**

इतिहास ने दिखाया है, यह संघर्ष समाजवाद में एक वस्तुगत और अनिवार्य परिघटना है।' स्थगन हो जाने या खत्म हो जाने के बदले देश के भीतर यह तीखे रूप में जारी रहता है, यह लहरों में चलता है और तीखे रूप में जारी रहता है और बाहरी मोर्चे पर वर्ग संघर्ष के साथ घुल–मिल जाता है। यह जीवन के हर क्षेत्र में होता है।

'' वर्ग संघर्ष आंतरिक और वाह्य शक्तियों के खिलाफ चलाया जाता है। यह शोषक वर्गों के अवशेषों के खिलाफ चलाया जाता है जो अपना प्रतिरोध जारी रखते हैं, मेहनतकश जनता पर हर तरीके से दबाव डालते हैं। यह उन लोगों के भी खिलाफ चलाया जाता है जो पतित हो जाते हैं और समाजवादी समाज में नये बुर्जुआ तत्व बन जाते हैं। इसी तरह यह नौकरशाही की अभिव्यक्तियों और विकृतियों के खिलाफ, उदारवादी और रूढ़िवादी दृष्टिकोण के खिलाफ चलाया जाता है। यह चोरी और समाजवादी सम्पत्ति के गलत इस्तेमाल, सभी पराई अभिव्यक्तियों, पितृसत्तात्मक, सामंती और बुर्जुआ सारतत्व वाली सभी फरानी धारणाओं, आदतों और परम्पराओं, निम्न पूंजीवादी मानसिकता और धार्मिक पूर्वाग्रहों के खिलाफ चलाया जाता है। यह बुर्जुआ और संशोधनवादी विचारधारा, साम्राज्यवाद और संशोधनवाद के राजनीतिक विचारधारात्मक दबाव व प्रभाव के खिलाफ चलाया जाता है जो काम, समाज, जीवन शैली, विज्ञान, कला और साहित्य में पराये, प्रतिक्रियावादी, पतनशील दृष्टिकोण और विचारों के स्रोत बन जाते हैं।'' (History of party of Labour of Albania, वही, पृष्ठ.402-403, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

''वर्ग संघर्ष के द्वारा शत्रुतापूर्ण और गैर–शत्रुतापूर्ण वर्ग अंतर्विरोध हल होते हैं और समाज विकसित होता है। अल्बानिया की श्रम की पार्टी को यह हमेशा स्पष्ट रहा है कि समाजवाद में शोषक वर्गों के खत्म होने के साथ शत्रुतापूर्ण अंतर्विरोध नहीं गायब हो जाते। वे गैर–शत्रुतापूर्ण अंतर्विरोधों के साथ मौजूद रहते हैं जो समाजवादी समाज की चारित्रिक विशेषता है। ''समाजवादी रास्ते और पूंजीवादी रास्ते के बीच, सर्वहारा विचारधारा व बुर्जुआ और संशोधनवादी विचारधारा के बीच, समाजवादी नैतिकता और निम्न पूंजीवादी मानसिकता, धार्मिक पूर्वाग्रह तथा पिछड़ी परम्पराओं के बीच, मेहनतकश जनता और शत्रुओं के बीच के अंतर्विरोध शत्रुतापूर्ण अंतर्विरोध हैं। मेहनतकश जनता के बीच के तथा समाजवादी व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं के बीच के अंतर्विरोध गैर शत्रुतापूर्ण अंतर्विरोध हैं। '' (वही, पृष्ठ–543, अनुवाद हमारा)

ऊपरी तौर पर लगता है कि अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी वही बातें कर रहे हैं जो माओ करते हैं। ये भी समाजवाद में वर्ग संघर्ष की मौजूदगी को स्वीकार करते हैं।

लेकिन इनके हिसाब से वह पूंजीपति वर्ग कहां है जो मजदूर वर्ग से संघर्ष करेगा? ये माओ व चीन की पार्टी पर आरोप लागाते हैं कि वे समाजवाद में वर्गों की मौजूदगी को स्वीकार करते हैं जो कि गलत है, कि समाजवाद में वर्ग नहीं होंगे। लेकिन यदि वर्ग नहीं होंगे तो वर्ग संघर्ष कैसे होगा? क्या बिना वर्गों के वर्ग संघर्ष हो सकता है? यदि बिना वर्गों के वह भी, बिना शत्रुतापूर्ण वर्गों की मौजूदगी के, शत्रुतापूर्ण वर्ग संघर्ष की बात की जा रही है तो यह अजीबोगरीब भाववाद है।

अपनी बात को थोड़ा स्वीकार्य बनाने के लिए होजा कहते हैं कि समाजवाद में फराने शोषक वर्ग के अवशेष बचे रहेंगे और कुछ नये तत्व भी पतित होकर वहीं पहुंच जायेंगे। लेकिन एक लम्बे समय में तो फराने शोषकों के अवशेष समाप्त हो जायेंगे। तब फिर पतित होने वाले तत्व बचेंगे जो मजदूर वर्ग से संघर्ष करेंगे। लेकिन क्या ये पतित होने वाले तत्व पूंजीवाद की फनर्स्थापना कर सकते हैं? और फिर कुछ पतित तत्व वर्ग संघर्ष, समूचे मजदूर वर्ग से संघर्ष कैसे चला सकते हैं, वह भी भीषण वर्ग संघर्ष? वर्ग संघर्ष तो वर्गों के बीच ही हो सकता है। इस तरह होजा समाजवाद में वर्गों की मौजूदगी से इंकार करके वस्तुतः वर्ग संघर्ष से ही इंकार कर देते हैं क्योंकि कुछ पतित तत्वों के खिलाफ संघर्ष वर्ग संघर्ष नहीं हो सकता। इसलिए वे इस संघर्ष के क्रांति तक जाने की, सर्वहारा क्रांति तक जाने की संभावना और अनिवार्यता को नहीं देख पाते। इसलिए वे सर्वहारा क्रांति को नहीं समझ पाते। उनके लिए पतित तत्वों के खिलाफ संघर्ष, उन्हें पार्टी व राज्य से बाहर करने, उन्हें दंडित करने और बाकी लोगों को समाजवादी विचारों में शिक्षित करने तक रह जाता है। यह सब पार्टी के नियंत्रण में ऊपर से किया जा सकता है और अल्बानिया में यही किया गया। यह कहें तो स्टालिनकालीन रूस में भी यह किया गया था।

इस तरह समाजवादी समाज में वर्गों की मौजूदगी से इंकार करके होजा वस्तुतः न केवल वर्ग संघर्ष से इंकार कर देते हैं बल्कि वे सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता और अनिवार्यता से भी इंकार कर देते हैं। इससे इंकार करने के कारण वे चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को नहीं समझ पाते और वह उन्हें महज व्यक्तियों का सत्ता का संघर्ष लगता है। चीन में उन्हें पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच भीषण संघर्ष नजर नहीं आता, बल्कि व्यक्तियों का सत्ता संघर्ष नजर आता है।

यह अकारण नहीं है कि अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी को समाजवादी समाज में माल–मुद्रा सम्बन्ध, 'प्रत्येक से योग्यतानुसार, प्रत्येक को काम के अनुसार' के बुर्जुआ अधिकार, शारीरिक श्रम व मानसिक श्रम के बीच भेद, वेतनमानों की विभिन्न श्रेणियां इत्यादि नजर नहीं आते। वे नहीं देख पाते कि उत्पादन के साधनों के राज्य की सम्पत्ति होने और स्वतः संगठित समूची जनता की सम्पत्ति होने में फर्क है, कि राज्य की मशीनरी का बने रहना और यहां तक कि पार्टी का बने रहना भी कम्युनिज्म के हिसाब से समस्या है क्योंकि यह गैर बराबरी, दबाव, बल प्रयोग इत्यादि को मान कर चलता है।

इन कारकों का समाजवादी समाज में बने रहना केवल कुछ पतित तत्वों को जन्म नहीं देगा बल्कि वह पूरे के पूरे संस्तर को जन्म देगा भले ही वह पहली नजर में दृश्यमान न हो। नौकरशाही की जड़ें इसी में हैं, जनता के सेवकों के शासक बन जाने की जड़ें इसी में हैं, विशेषज्ञों के बुर्जुआ बन जाने की जड़ें इसी में हैं। इसी के कारण पार्टी और राज्य के पदाधिकारी, उत्पादन और वितरण इकाइयों के प्रबन्धक/ संचालक तथा अन्य विशेषज्ञ और विशिष्टता प्राप्त लोग बुर्जुआ वर्ग में रूपान्तरित हो जाते हैं और पूंजीवाद की फनर्स्थापना हो जाने की प्रवृत्ति की जड़ें उपरोक्त भौतिक आधार में हैं। जब तक वह आधार मौजूद है तब तक यह प्रवृत्ति मौजूद रहेगी। और चूंकि वह आधार (क्रमशः कमजोर होते हुए भी) समूचे समाजवादी दौर में मौजूद रहेगा इसलिए वर्ग और वर्ग संघर्ष समूचे समाजवादी काल में रहेंगे। इसी से यह भी स्पष्ट है कि क्यों सांस्कृतिक क्रांति का निशाना 'पार्टी और शासन में बैठे हुए पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले लोग' होंगे और क्यों यह संघर्ष इनके खिलाफ आम जनता का संघर्ष होगा, क्यों यह अपने भविष्य को अपने हाथ में लेने का भी संघर्ष होगा। इसी से यह भी स्पष्ट है क्यों यह संघर्ष पार्टी द्वारा नेतृत्व दिये जाने के बावजूद पूर्णतया उसके द्वारा नियंत्रित–नियमित नहीं होगा क्योंकि इसका एक महत्वपूर्ण निशाना पार्टी में बैठे पूंजीवादी पथगामी ही होंगे। और इसका लक्ष्य जनता की पहलकदमी खोलना, अपना भविष्य अपने हाथ में लेना भी होगा।

अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी समाजवादी समाज के इस चरित्र को नहीं समझ पाते। इसलिए वे न तो इसमें चलने वाले वर्ग संघर्ष को सही तरह से समझ पाते हैं और न ही सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को। वे चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति से कुछ चीजें उधार लेते हैं लेकिन उन्हें आत्मसात नहीं कर पाते। वे उधार लिए गये पराये हथियार बने रहते हैं।

ग. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को समझने में पूरी तरह नाकामयाब रहे। हालांकि उन्होंने घोषित किया कि मार्क्सवादी वही है जो समाजवाद में भी वर्ग संघर्ष के जारी रहने को स्वीकार

करता है, लेकिन वे खुद इसके समूचे निहितार्थ को समझ नहीं पाये। वे वर्ग संघर्ष का मतलब पार्टी में ऊपर से शुद्विकरण और पार्टी द्वारा समाजवादी शिक्षा अभियान समझते रहे।

बाद में उन्होंने चीन के बारे में अपनी धारणा बदलने पर चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को केवल व्यक्तियों या गुटों के बीच का सत्ता संघर्ष माना। उन्होंने कहा कि यह क्रांति न तो महान थी, न सर्वहारा, न सांस्कृतिक और न ही क्रांति।

1971 में जब कि अभी सांस्कृतिक क्रांति चल रही थी तब होजा ने उसके बारे में सकारात्मक मूल्यांकन पेश किया : ''महत्वपूर्ण बात यह है कि एक समूचा महाद्वीप, जैसा कि चीन है, संशोधनवादी खतरे से बच गया लगता है, कि जो कुछ कहा जा रहा है उसके हिसाब से वहां सर्वहारा क्रांति विजयी रही है और हम इस पर खुशी मनाते हैं।'' (Enever Hoxha, Reflections on China, वही, Vol-I, Page-522)

लेकिन बाद में इसके बारे में उनका मूल्यांकन बदल गया और उन्होंने इसे खारिज कर दिया। 'साम्राज्यवाद और क्रांति' में उन्होंने लिखा :

''घटनाओं के प्रवाह ने यह दिखाया कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति न तो क्रांति थी, न महान, न सांस्कृतिक और खासकर न ही जरा भी सर्वहारा। यह उन मुट्ठी भर प्रतिक्रियावादियों को खत्म करने के लिए समूचे चीन के पैमाने का महज तख्तापलट था जिन्होंने सत्ता पर कब्जा कर लिया था।

''वास्तव में सांस्कृतिक क्रांति धोखे का प्रहसन थी। इसने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और जन संगठनों दोनों को समाप्त कर दिया और चीन को नयी अराजकता में धकेल दिया। इस क्रांति का नेतृत्व गैर मार्क्सवादी तत्वों ने किया था और वे अन्य गैर मार्क्सवादी और फासीवादी तत्वों के सैनिक तख्तापलट से समाप्त कर दिये गये हैं।'' (वही, Part-II,Chapter-II, Page-4)

आधिकारिक इतिहास में इसका जो मूल्यांकन पेश किया गया वह भी इसे खारिज करने के साथ इसे समझ पाने की अक्षमता को दिखाता है :

'' इन अवस्थितियों से अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने चीन की सांस्कृतिक क्रांति का समर्थन किया। लेकिन तब भी इसने पूंजीवादी और संशोधनवादी तत्वों को समाप्त करने के मुख्य उद्देश्य का समर्थन किया जो कि इस क्रांति को हासिल करना था, न कि इस उठा–पटक में इस्तेमाल हर कार्यनीति और तरीके का। इस उठा–पटक को क्रांति कहा गया जो, जैसा कि घटनाओं के प्रवाह ने दिखाया, 'न तो क्रांति थी, न महान, न सांस्कृतिक और खासकर न ही जरा भी सर्वहारा।' अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने चीनी सांस्कृतिक क्रांति में अराजक चरित्र के व्यवहार, मजदूर वर्ग और उसकी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के अभाव को स्वीकार नहीं किया। इसने चीन में समाजवाद के, चीनी जनता और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के हित की रक्षा की लेकिन इसने विरोधी प्रवृत्तियों के द्वारा विरोधी लाइनों पर गुटीय संघर्ष की किसी भी रूप में रक्षा नहीं की, जिनके बीच सशस्त्र संघर्ष तक हुए और जो सर्वहारा की तानाशाही और समाजवाद को बचाने के लिए नहीं हुए बल्कि अपने लिए सत्ता पर कब्जे के लिए हुए।'' (वही, Page 457, अनुवाद हमारा)

चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति चीन के पूंजीवादी–पथगामियों के खिलाफ लक्षित थी यानी उन लोगों के खिलाफ जो पार्टी और शासन में महत्वपूर्ण पदों पर थे और पूंजीवाद की ओर ले जाने वाला रास्ता अपना रहे थे। ल्यू शाओ–ची और देंग स्याओ–पिंग इनके नेता थे। जैसा कि 1976 में माओ के मरने के बाद साबित हुआ, देंग स्याओ–पिंग तेजी से चीन को पूंजीवाद के रास्ते पर ले गया।

लेकिन ल्यू शाओ–ची और देंग स्याओ–पिंग अकेले नहीं थे। इसीलिए केवल उन्हें सत्ता से बेदखल कर, उन्हें पार्टी से निष्कासित कर या यहां तक कि उन्हें फांसी चढ़ाकर काम नहीं चल सकता था। वे तो चीन के समाजवादी समाज में मौजूद पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि थे। और यह वर्ग केवल फराने पूंजीपति वर्ग के अवशेषों से ही नहीं निर्मित था। इसमें समाजवाद में पैदा हुआ नया संस्तर भी शामिल हो रहा था, जिसका ऊपर जिक्र किया गया है। इसने पार्टी और शासन में ऊपर से नीचे तक गहरी जड़ें जमा ली थीं।

इसलिए इनके खिलाफ संघर्ष कुछ व्यक्तियों को सत्ताच्युत करने का, पार्टी के समाजवादी शिक्षा अभियान का संघर्ष मात्र नहीं हो सकता था। वस्तुतः चीन में 1962 से चलाया जा रहा समाजवादी शिक्षा अभियान इस मामले में असफल साबित हुआ था। जिनके खिलाफ संघर्ष होना था वे ही समाजवादी शिक्षा अभियान चला रहे थे। और यह बात केवल ल्यू और देंग पर ही लागू नहीं होती थी। ऊपर से नीचे तक हजारों ल्यू और देंग थे। माओ के हिसाब से चार–पांच प्रतिशत। पार्टी में जड़ जमाये बैठे ये लोग अपने खिलाफ पार्टी द्वारा चलाये जा रहे किसी भी अभियान को निशानाविहीन बना सकते थे क्योंकि अभियान पर उन्हीं का नियंत्रण होता। इस तरह यदि सांस्कृतिक क्रांति पूर्णतया पार्टी के नियंत्रण में ही होती, जनता को स्वतंत्र पहलकदमी का मौका न मिलता तो ये तत्व सुरक्षित बने रहते।

होजा और अल्बानिया की पार्टी इसी को नहीं समझ पाते। वे बार–बार यह सवाल उठाते हैं कि इस क्रांति को पार्टी के नेतृत्व में क्यों नहीं चलाया गया, पार्टी का इस पर पूर्ण नियंत्रण क्यों नहीं रहा, इतनी अराजकता क्यों रही? मामले के सारतत्व को न पकड़ पाने के कारण ही वे बार–बार यह सवाल उठाते हैं।

सांस्कृतिक क्रांति को चलाने का निर्णय पार्टी द्वारा ही लिया गया और 16 मई 1966 का सर्कुलर जारी किया गया। फिर पार्टी द्वारा इसे चलाने के सबंध में 16 सूत्रीय निर्देश अगस्त 1966 में जारी किये गये। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि सांस्कृतिक क्रांति पार्टी के नेतृत्व में चल रही थी। लेकिन क्या पूरा पार्टी नेतृत्व इस पर एकमत था? नहीं! और वह हो भी नहीं सकता था क्योंकि यह क्रांति अंशतः पार्टी के ही एक हिस्से के खिलाफ लक्षित थी– सत्ता में बैठे पूंजीवादी पथगामी लोगों के खिलाफ। इस बुर्जुआ हेडक्वार्टर के प्रधान व उप प्रधान थे ल्यू और देंग। ल्यू पार्टी का उपाध्यक्ष और देश का राष्ट्रपति था। जबकि देंग पार्टी का महासचिव। पार्टी का सारा सांगठनिक ताना–बाना उसके हाथ में था।

यदि सांस्कृतिक क्रांति इनके नेतृत्व में चलती तो क्या होता? क्रांति किस पर प्रहार करती? कहा जा सकता है कि इन्हें हटाकर फिर पार्टी द्वारा क्रांति को संचालित करना चाहिए था। लेकिन क्या इन्हें हटाना इतना आसान था? और क्या वे अकेले लोग थे?

स्पष्ट है कि पार्टी और सत्ता में जमे इन लोगों को जन सैलाब से ही हिलाया जा सकता था। और फिर जनता द्वारा अपना भाग्य अपने हाथ में लेने की चीज पूर्णतया पार्टी के निर्देशन में नहीं फलीभूत हो सकती। इस स्वतंत्र पहलकदमी में एक हद तक अराजकता निहित है। और फिर वह क्रांति क्या जिसमें अराजकता न हो? क्रांति का समय अराजकता का चरम होता है क्योंकि उसमें एक बंधी–बंधाई व्यवस्था ध्वस्त हो रही होती है और उस विध्वंस के बीच से नयी व्यवस्था निकल रही होती है। क्रांतियों में अराजकता से ही व्यवस्था का विकास होता है। यदि ऐसा न हो तो कम से कम इस तरह की घटना को क्रांति नहीं कहा जा सकता। इसीलिए पार्टी द्वारा चलाये समाजवादी शिक्षा अभियान और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति में फर्क होता है। होजा जब बार–बार पार्टी के किनारे लग जाने और अराजकता फैलने का रोना रोते हैं तो इसी फर्क के कारण। वे समाजवादी शिक्षा अभियान चाहते थे, सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति नहीं।

यही बात वास्तव में पार्टी का आधिकारिक इतिहास कहता है :

'' इसलिए छठी कांग्रेस ने मांग की कि विचारधारात्मक सांस्कृतिक क्रांति निरंतर जारी रखी जाय, धर्म, पिछड़ी परम्पराओं, निम्न पूंजीवादी मानसिकता, काम व समाजवादी सम्पत्ति के प्रति परायी मनोवृत्ति के खिलाफ, औरतों की पूर्ण मुक्ति, परिवार में जनवादी जीवन के लिए संघर्ष निरंतर जारी रखा जाय। विचारधारात्मक मोर्चे पर संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक वर्ग संघर्ष जारी रहेगा और जैसा कि कांग्रेस ने फिर से इंगित किया, यह पूंजीवाद से कम्युनिज्म तक के समूचे संक्रमण काल में जारी रहता है।'' (वही, Page-470ए अनुवाद हमारा)

चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति में केवल विचारों, आदतों, बुर्जुआ–पेटी बुर्जुआ मनोवृत्तियों, निजी सम्पत्ति से जुड़े विचारों इत्यादि के खिलाफ संघर्ष नहीं चलाया गया था। यह सब करने के साथ पूंजीवादी पथगामियों को सत्ता से उखाड़ फेंका गया था, नीचे से सत्ता पर कब्जा किया गया था, तीन एक में की क्रांतिकारी कमेटियां बनाई गई थीं इत्यादि। यह सब करके सर्वहारा की तानाशाही को और मजबूत बनाया गया। इस सब में अत्यंत तीखा संघर्ष हुआ था और हिंसा तक की नौबत आई थी। यह क्रांति थी, खुद कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा चलाई गई क्रांति इसलिए सारे संसार के पूंजीपति इसे देखकर स्तब्ध रह गये। उन्हें समझ में नहीं आया कि चीन में क्या हो रहा है। संशोधनवादी पार्टियां इससे भयभीत हो गई। और घटनाओं ने बाद में दिखाया ही नहीं, उसी समय यह स्पष्ट हो गया कि होजा और अल्बानिया की पार्टी के लिए यह अबूझ पहेली बन गई है। चीन की पार्टी के साथ होने के चलते उस समय तो उन्होंने इसका समर्थन किया लेकिन बाद में इसे व्यक्तियों का सत्ता संघर्ष बताकर खारिज कर दिया।

इस तरह सांस्कृतिक क्रांति को समझने की अपनी पूर्ण अक्षमता प्रदर्शित कर उसका विरोध करते हुए वे अंततः वहीं पहुंच गये जहां ख्रुश्चोव–ब्रेझनेव और सारे संशोधनवादी पहुंचे हुए थे। सारे बुर्जुआ और संशोधनवादियों के सुर में सुर मिलाकर वे सांस्कृतिक क्रांति को गाली देने लगे। देंग ने बाद में इसे महान विपदा घोषित किया। होजा के लिए भी यह महान विपदा ही साबित हुई। इसने उन्हें संशोधनवादियों की पातों में बैठा दिया।

घ. पार्टी और उसके भीतर लाइनों का संघर्ष

अनवर होजा के अनुसार अन्य बातों के अलावा माओ का अपराध यह था कि उन्होंने पार्टी के भीतर लाइनों के संघर्ष को सिद्वान्त के स्तर पर पहुंचा दिया और कहा कि पार्टी के भीतर एक से ज्यादा लाइनें होनी चाहिए, कि इनके बीच संघर्ष अच्छा है, कि पार्टी के भीतर विरोधी लाइनों से समझौता करना चाहिए। होजा के अनुसार ऐसा करके माओ पार्टी के भीतर गुटों को मान्यता दे रहे थे।

इसके विपरीत होजा और अल्बानिया की पार्टी एकाश्मिक पार्टी के पक्ष में थे। वे पार्टी के भीतर पूर्ण एकता के पक्ष में थे। उनके अनुसार पार्टी के भीतर विरोधी लाइन को कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उसे पैदा होते ही कुचल डालना चाहिए। होजा कहते हैं :

'' चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में सोच और व्यवहार की सच्ची मार्क्सवादी–लेनिनवादी एकता कभी नहीं रही और न है। ...माओ ने खुद ही पार्टी के भीतर 'दो लाइनों' के रहने की वकालत की है। उनके हिसाब से दो लाइनों की मौजूदगी और उनके बीच संघर्ष एकदम स्वाभाविक है, विपरीतों की एकता की अभिव्यक्ति है, एक लचीली नीति है जो सिद्वान्तों के प्रति निष्ठा और समझौता दोनों को समेटती है। वे लिखते हैं :'इस तरह गलती करने वाले कामरेड के साथ व्यवहार करने के लिए हमारे पास दो हाथ हैं : एक हाथ उसके साथ संघर्ष करने के लिए और दूसरा हाथ उससे एकता करने के लिए। इस संघर्ष का लक्ष्य है मार्क्सवाद के सिद्वान्तों की रक्षा करना यानी कि सिद्वान्तनिष्ठ होना, यह समस्या का एक पहलू है। एकता का लक्ष्य है उसे रास्ता देना, उसके साथ समझौते पर पहुंचना।'

''ये विचार संगठित अग्रगामी दस्ते के रूप में पार्टी की लेनिनवादी शिक्षाओं के बिलकुल खिलाफ हैं क्योंकि पार्टी में केवल एक लाइन और सोच तथा व्यवहार की एकता होनी चाहिए।'' (अनवर होजा, Imperialism and Revolution, वही, part-II, chapter-3, Page-6, अनुवाद हमारा) इसी बात को आधिकारिक इतिहास इस रूप में प्रस्तुत करता है:

'' पार्टी की एकता का विखंडन आंतरिक और बाह्य शत्रुओं का स्थाई लक्ष्य है। सोवियत, टीटोवादी और अन्य संशोधनवादियों ने अल्बानिया की श्रम की पार्टी की परम्परागत इस्पाती एकता के आधार को हिलाने, इसकी कतारों में फूट डालने के लिए किसी भी साधन को इस्तेमाल करने से गुरेज नहीं किया जिससे कि इसे मार्क्सवादी–लेनिनवादी रास्ते से भटकाया जा सके और संशोधनवादी रास्ते पर डाला जा सके। इसके अलावा, माओ त्से तुंग ने, जिन्होंने लम्बे समय से पार्टी के भीतर विरोधी गुटों, लाइनों और लाइनों के बीच संघर्ष की मौजूदगी को वस्तुगत परिघटना से सिद्वान्त के स्तर पर पहुंचा दिया था, उन्होंने इस मार्क्सवाद विरोधी 'सिद्वान्त' को अल्बानिया की श्रम की पार्टी पर चाऊ एन लाई के जरिये लादने की कोशिश की जब वे जून 1966 में अल्बानिया की यात्रा पर थे।

''मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी की एकता के महान सिद्वान्त को लागू करते हुए अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने अपनी कतारों के भीतर गुटीय प्रवृत्तियों और विरोधी संशोधनवादी लाइनों के ठोस रूप ग्रहण करने को कभी इजाजत नहीं दी है। इसने शत्रुतापूर्ण तत्वों और विचारों को, पार्टी विरोधी गुटीय समूहों को समय रहते खोज निकाला है और ध्वस्त कर दिया है तथा उन्हें इस बात की संभावना नहीं दी है कि वे अपने को विरोधी प्रवृत्तियों और लाइन में रूपान्तरित कर सकें। इस अनुभव का समाहार करते हुए और परोक्षतः चीनी नेतृत्व को जवाब देते हुए कामरेड अनवर होजा ने घोषित किया 'कोई भी आत्म सम्मान वाली मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी अपने भीतर दो लाइनों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर सकती और इसलिए यह एक या कई गुटों को इजाजत नहीं दे सकती। यदि ऐसी चीज पैदा होती है तो पार्टी को थोड़े समय के लिए भी इसके अस्तित्व को बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। पार्टी के भीतर गुट, सिद्वान्त और व्यवहार की मार्क्सवादी– लेनिनवादी एकता के खिलाफ जाता है, पार्टी को एक सामाजिक जनवादी पार्टी और समाजवादी देश को पूंजीवादी में बदलने का प्रयास करता है।' व्यवहार ने यह साबित किया है कि पार्टी के भीतर विरोधी विचारधाराओं और लाइनों का ठोस रूप ग्रहण कर लेना यह दिखाता है कि या तो यह सच्ची मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी नहीं है या फिर यह होने के बावजूद इसने अपनी कतारों के भीतर सही, सुसंगत और दृढ़ वर्ग संघर्ष नहीं चलाया है।'' (वही, पृष्ठ– 418–419, अनुवाद हमारा)

इनके अनुसार होजा और अल्बानिया की पार्टी ने पार्टी के भीतर गैर सर्वहारा विचारधारा को कभी नहीं पनपने दिया और पार्टी के भीतर मार्क्सवादी– लेनिनवादी एकाश्मिक एकता बरकरार रखी।

यह सारा कुछ पार्टी के बारे में गैर द्वन्द्ववादी धारणा है। द्वन्द्ववाद की यह बुनियादी बात है कि प्रकृति और समाज की हर चीज अंतर्विरोध से ग्रस्त है, कि हर चीज में दो विरोधी पहलू होते हैं, कि किसी भी चीज में विद्यमान अंतर्विरोधों के जरिये ही उसका विकास होता है। अंतर्विरोधों से अलग विकास की कोई अवधारणा गैर द्वन्द्ववादी अवधारणा है।

कम्युनिस्ट पार्टी के ऊपर भी ये सारी चीजें लागू होती हैं। पार्टी एकाश्मिक नहीं होती। इसके भीतर अंतर्विरोध विद्यमान होते हैं। ये अंतर्विरोध लाइनों के संघर्ष के रूप में अपने को अभिव्यक्त करते हैं। लाइनों के बीच संघर्ष के जरिये ही पार्टी का विकास होता है। पार्टी के भीतर संघर्षरत ये लाइनें नये और फराने के बीच के संघर्ष को या वर्गों के बीच के संघर्ष को अभिव्यक्त करती हैं। सही लाइन सर्वहारा वर्ग की विचारधारा होती है जो पार्टी को क्रांति की तरफ या समाजवादी समाज को कम्युनिज्म की तरफ ले जाती है। गलत लाइन बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ वर्ग की विचारधारा होती है जो सुधारवाद की तरफ, ''वामपंथी'' भटकावों की तरफ या पूंजीवाद की फनर्स्थापना की तरफ ले जाती है। जब तक पार्टी रहेगी तब तक पार्टी के भीतर यह लाइनों का संघर्ष भी रहेगा। पार्टी के भीतर दो या दो से ज्यादा लाइनें आपस में टकरा रही होंगी। यदि दो लाइनों का कोई संघर्ष हल होता है (एक लाइन के परास्त होने या इसके समर्थकों द्वारा फूट कर लेने) तो तुरंत ही दूसरा संघर्ष शुरू हो जाता है। एक तुरंत दो में विभाजित हो जाता है।

लाइनों के इस संघर्ष में एक प्रभुत्वशाली होती है और दूसरी गौण। यदि प्रभुत्वशाली लाइन सही होती है तो पार्टी सही दिशा में जाती है, अन्यथा यह पतित हो जाती है। लेकिन लाइनों की यह स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं होती। प्रभुत्वशाली लाइन गौण बन सकती है और गौण लाइन प्रभुत्वशाली। इस कारण कोई क्रांतिकारी पार्टी पतित होकर संशोधनवादी में तब्दील हो सकती है।

जैसा कि पहले कहा गया है, ये लाइनें पार्टी में वर्गों के संघर्ष को अभिव्यक्त कर रही होती हैं। समाज में पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा के बीच जो संघर्ष चल रहा होता है वही पार्टी में भी अभिव्यक्त होता है। इस तरह पार्टी के भीतर लाइनों का संघर्ष समाज के बीच चलने वाले वर्ग संघर्ष का प्रतिबिंब है। पार्टी के भीतर लाइनों का संघर्ष वह वस्तुगत यथार्थ है जो केवल पार्टी के खत्म होने पर ही खत्म होगा।

माओ न तो यह कह रहे थे कि पार्टी के भीतर दो लाइनों का संघर्ष चलना चाहिए और न ही यह कि पार्टी में गुटबाजी होनी चाहिए। माओ ''चलना चाहिए'' क्यों कहेंगे जबकि वे जानते थे कि संघर्ष होगा ही होगा। यह किसी की इच्छा की बात नहीं है। माओ केवल यह कह रहे थे कि पार्टी के भीतर चलने वाले लाइनों के संघर्ष को हमें सही तरीके से संचालित करना चाहिए। उसमें संघर्ष के साथ एकता के उसूल का पालन करना चाहिए। यह उसी बात को कहने का दूसरा तरीका है कि किसी अंतर्विरोध के दोनों पहलुओं में संघर्ष के साथ एकता भी होती है। लेकिन जैसा कि माओ स्वयं कहते हैं संघर्ष और एकता में संघर्ष का पहलू प्रधान होता है। एकता तात्कालिक और सापेक्ष होती है जबकि संघर्ष चिरस्थाई और निरपेक्ष। माओ यह जानते थे कि पार्टी के भीतर विरोधी लाइनों की उपस्थिति एक सीमा के भीतर ही हो सकती थी। यदि गलत लाइन गौण से प्रधान बनने लगती तो उसके खिलाफ संघर्ष अत्यंत तीव्र हो जाता जो गलत लाइन के पराजित होने या फूट तक जाता। गलत लाइन केवल सही लाइन के प्रभुत्व को स्वीकार कर ही पार्टी में रह सकती है यानी गलत लाइन को मानने वाले बहस समाप्त हो जाने के बाद सही लाइन को मानकर, उसे लागू करते हुए पार्टी में बने रह सकते हैं, भले ही वे व्यक्तिगत तौर पर अपनी गलत लाइन को मानते रहें। कम्युनिस्ट पार्टी इसी उसूल पर चलती है और यही यथार्थ से मेल भी खाता है। लेकिन ऐसा करने का मतलब पार्टी में गुटों या गुटबाजी को इजाजत देना नहीं होता। इसके इतर कुछ हो भी नहीं सकता। यदि पार्टी के भीतर विरोधी लाइन को समाप्त करने के लिए उसके प्रस्तोताओं को निकाल बाहर किया जाता है तो इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा। एक तुरंत दो में विभाजित हो जायेगा और या तो तुरंत दूसरी विरोधी लाइन हाजिर हो जायेगी या वही फरानी लाइन नये रूप में नये प्रस्तोताओं के साथ आ जायेगी। ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि विरोधी लाइन और उसके प्रस्तोता दबे रहें और छिपे रहें, लेकिन वे होंगे जरूर। इनके और हावी लाइन के बीच संघर्ष विकसित होता रहेगा तथा एक दिन अचानक मुखर हो जायेगा। ऐसा अक्सर तब होगा जब कोई आंतरिक या बाह्य बड़ी घटना घटित होगी। इस तरह 'एकाश्मिक' पार्टी में, 'इस्पाती एकता' वाली पार्टी में, 'गुटों व लाइनों से मुक्त' पार्टी में अचानक पार्टी विरोधी गुट पैदा हो जायेंगे। स्टालिन के समय बोल्शेविक पार्टी में और स्वयं अनवर होजा की पार्टी में भी यही होता रहा। उनकी पार्टी दो लाइनों के संघर्ष से मुक्त होती थी, उसमें पूर्ण और अभूतपूर्व एकता होती थी लेकिन तभी अचानक पार्टी विरोधी गुट पैदा हो जाते थे। यथार्थ को अस्वीकार कर उससे निपटने का तरीका सबसे बुरा तरीका है। माओ ने यह बताया कि पार्टी के भीतर लाइनों का संघर्ष अनिवार्य है। इस यथार्थ को स्वीकार कर हमें लाइनों के संघर्ष को सही तरह से संचालित करना चाहिए। केवल इसी तरह पार्टी को सही लाइन पर बनाये रखा जा सकता है। अल्बानिया की पार्टी कहती है कि एकाश्मिक पार्टी की उनकी सही नीति के चलते उन्हें पार्टी में कभी व्यापक पैमाने पर छंटनी की जरूरत नहीं पड़ी : ''मजदूर वर्ग की अन्य पार्टियों से भिन्न अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने अपनी कतारों की व्यापक छंटनी नहीं की है। यह इस तथ्य के साथ जुड़ा है कि पार्टी की कतारों के भीतर गुटीय प्रवृत्तियों और विरोधी लाइनों को पैदा करना संभव नहीं था। इन्हीं के नाश के लिए ही व्यापक छंटनी की जरूरत पड़ती है। अल्बानिया की श्रम की पार्टी की कतारों का शुद्विकरण हमेशा ही सामान्य रूप में किया जाता रहा है, इसके संविधान के उसूलों और नियमों को नियमित तौर पर लागू करने की प्रक्रिया में।'' (वही, Page-532, अनुवाद हमारा)

लेकिन यदि यह दावा सही है तो स्टालिन के नेतृत्व वाली बोल्शेविक पार्टी के बारे में क्या कहें? 1934 की 'विजेताओं की कांग्रेस' के बाद 1936.38 में वहां सबसे ज्यादा छंटनी हुई। यह क्यों हुआ? क्या स्टालिन की नीति गलत थी या स्टालिन का व्यवहार गलत था? अल्बानिया की पार्टी का यह दावा प्रकारान्तर से स्टालिन की आलोचना है, उस स्टालिन की जिन्हें वे शत–प्रतिशत सही मानते हैं। सच बात तो यह है कि स्टालिन की कुछ सैद्वान्तिक गलतियों में एक उनकी एकाश्मिक पार्टी की अवधारणा भी थी।

च. स्टालिन का सवाल

अनवर होजा ने माओ पर स्टालिन विरोधी होने का आरोप लगाया। उनके अनुसार स्टालिन के मरने के बाद माओ ने सोचा कि वे विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के नेता बन सकते हैं। ख्रुश्चोव एण्ड कम्पनी उन्हें नेता मान लेंगे। यही नहीं, वे यह भी सोचते थे कि सोवियत संघ परमाणु बम की तकनीक उन्हें देकर महाशक्ति बनने में भी मदद करेगा। लेकिन जब उन्होंने ऐसा नहीं होते देखा तो वे ख्रुश्चोव के विरोधी बन गये। जैसा कि पहले ही कहा गया है, यह वही शरलॉक होम्स वाली अटकलबाजी है। और मजे की बात है कि माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी पर यही आरोप ख्रुश्चोव एण्ड कम्पनी ने लगाया था कि वे विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन का नेतृत्व हड़पने का प्रयास कर रहे हैं। यह शोध करना दिलचस्प होगा कि होजा ने यह आरोप ख्रुश्चोव से उधार लिया है या यह खुद उनके दिमाग की उपज है। ज्यादा संभावना यही है कि वे लुक–छिपकर ख्रुश्चोव के शिष्य बन गये हैं। होजा ने माओ पर विस्तार से ये आरोप लगाये हैं :

'' चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर सोवियत संघ का एकाधिकार समझता था। जिसके प्रति माओ त्से तुंग एण्ड कम्पनी अंधराष्ट्रवादी, बड़े राज्य का दृष्टिकोण पालते थे और आप कह सकते हैं कि उनमें एक किस्म की बुर्जुआ जलन थी। वे लेनिन और स्टालिन के समय के सोवियत संघ को सर्वहारा की महान पितृभूमि नहीं समझते थे जिस पर क्रांति करने के लिए विश्व भर के सर्वहारा भरोसा करते थे और जिसकी बुर्जुआ वर्ग और साम्राज्यवाद के भीषण हमले के खिलाफ अपनी पूरी ताकत से उन्हें रक्षा करनी थी। दशकों पहले चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के दो प्रमुख नेताओं माओ त्से तुंग और चाओ एन लाई ने स्टालिन के नेतृत्व वाले सोवियत संघ के खिलाफ बोला था और व्यवहार किया था। यहां तक कि उन्होंने स्टालिन के खिलाफ भी बोला। माओ ने स्टालिन पर मनोगतवाद का यह कहते हुए आरोप लगाया कि 'वे विपरीतों के बीच संघर्ष और विपरीतों की एकता के बीच संबंध देखने में असफल रहे' (माओ), कि उन्होंने 'चीन के सम्बन्ध में कई गलतियां कीं'। दूसरे क्रांतिकारी गृहयुद्व के दौरान वांग मिंग की 'वाम दुस्साहसवादी' लाइन और जापान के खिलाफ युद्व के दौरान उसके दक्षिणपंथी अवसरवाद के स्त्रोत को स्टालिन तक देखा जा सकता है, कि यूगोस्लाविया और टीटो के प्रति स्टालिन की कार्यवाहियां गलत थीं, इत्यादि।

''हालांकि कभी–कभार दिखाने के लिए माओ स्टालिन के पक्ष मे कुछ बातें कहते थे, यह कहते हुए कि वे केवल 30 प्रतिशत खराब थे, वास्तव में वे केवल स्टालिन की गलतियों की चर्चा करते थे।...'' (वही, Imperialism and Revolution, part-II, chapter 3, Page-17, अनुवाद हमारा)

माओ को बदनाम करने वाले तर्क बेबुनियाद हैं। माओ ने स्टालिन को हमेशा एक महान मार्क्सवादी–लेनिनवादी माना। उनकी हमेशा रक्षा की। जब ख्रुश्चोव ने सोवियत पार्टी की बीसवीं कांग्रेस में स्टालिन पर कीचड़ उछाला तो चीन की पार्टी ने स्टालिन की रक्षा में उसी साल दो लेख प्रकाशित कराये। 1957 व 60 की बैठकों में भी माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने स्टालिन की रक्षा की। इसके बाद महान बहस की नौ टिप्पणियों में दूसरी टिप्पणी स्टालिन की रक्षा में ही प्रकाशित की गई।

यहां यह ध्यान रखने की बात है कि माओ ने स्टालिन की यह रक्षा तब की जब स्वयं उनकी पार्टी में ल्यू और देंग जैसे ख्रुश्चोव के छिपे हुए समर्थक मौजूद थे जिन्हें सांस्कृतिक क्रांति के दौरान चीन का ख्रुश्चोव नंबर एक और नंबर दो कहा गया।

हां, यह सही है कि माओ ने स्टालिन की कुछ गलतियों को चिर्ति किया और उन्हें सत्तर प्रतिशत सही और तीस प्रतिशत गलत कहा। स्टालिन की इन गलतियों को चिर्ति किया जाना महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की पूर्व पीठिका बनीं।

जैसा कि पहले कहा गया है, अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी प्रकारान्तर से स्टालिन की आलोचना करते हैं। वे जब सोवियत संघ में पूंजीवाद की फनर्स्थापना की बात करते हैं तो उसके कारण गिनाते हुए जो बातें कही जाती हैं वे प्रकारान्तर से स्टालिन की आलोचना हैं। इसी तरह पार्टी में व्यापक पैमाने की छंटनी की बात भी प्रकारान्तर से स्टालिन की आलोचना है। यही नहीं, 1960 की बैठक में अनवर होजा ने बीसवीं कांग्रेस की स्टालिन की आलोचना को स्वीकार कर लिया था। तब उन्होंने कहा था : ''अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने अपने को एक बड़ी दुविधा में पाया। जिस तरह से कामरेड ख्रुश्चोव ने स्टालिन की भर्त्सना की उससे वह सहमत नहीं थी और कभी भी सहमत नहीं हो सकती। इस मामले में हमारी पार्टी ने, आमतौर पर बीसवीं कांग्रेस के सूत्र को अपना लिया लेकिन तब भी यह कांग्रेस की सीमाओं से बंधी नहीं रही और न ही इसने हमारे देश के बाहर से भयदोहन और धमकी के सामने समर्पण किया।'' (Enever Hoxha, Reject the Revisionist Thesis of the XX Congress of the CPSU and the Anti-Marxist stand of Khrushchevs Group! uphold Marxism-Leninism, Internet edition, वही, page 34)

अनवर होजा प्रकारान्तर से तो स्टालिन की आलोचना करते हैं लेकिन खुले तौर पर पूर्णतया स्टालिन का समर्थन करते हैं। इस प्रयास में वे स्टालिन की गलतियों, कमियों/सीमाओं का भी समर्थन करते हैं। जैसा कि माओ ने कहा था स्टालिन ने कुछ गलतियां की थीं जिनसे बचा जा सकता था। लेकिन कुछ ऐसी गलतियां भी थीं जिनसे तब नहीं बचा जा सकता था। वे गलतियां या तो समय की सीमाओं के कारण हुई थीं या इस कारण कि दुनिया में पहली बार समाजवाद का निर्माण हो रहा था। इन गलतियों, कमियों–सीमाओं को न स्वीकार कर अनवर होजा सौ प्रतिशत स्टालिनपंथी बनना चाहते हैं। इस तरह वे अपने आप को सौ प्रतिशत मार्क्सवादी– लेनिनवादी मानते हैं। लेकिन होता उलटा है। वे इसी कारण माओ के योगदान को स्वीकार नहीं कर पाते और अंततः खुद संशोधनवादी जमीन पर खड़े हो जाते हैं। इतिहास की यह अजीबोगरीब परिघटना होजा के साथ भी घटित होती है जब वे पूर्णतया रूढ़िवादी मार्क्सवादी बने रहने के प्रयास में संशोधनवादी हो जाते हैं।

छ. व्यक्ति पूजा का सवाल

अनवर होजा ने माओ पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने अपनी व्यक्ति पूजा को बढ़ावा दिया, कि चीनियों ने माओ को देवता बना दिया। बाद में जब होजा माओ विरोधी हो गये तो उन्होंने माओ का इस सम्बन्ध में मजाक भी उड़ाया। ८

यक्ति पूजा के मामले में माओ और चीन की पार्टी की क्या अवस्थिति थी। स्टालिन के बारे में महान बहस की दूसरी टिप्पणी में यह लिखा हुआ है :

'' चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने इतिहास में जनता और व्यक्ति की भूमिका के बारे में और नेता, पार्टी, वर्ग तथा जनता के बीच के अंतर्संबंधों के बारे में मार्क्सवादी–लेनिनवादी शिक्षाओं का हमेशा अनुसरण किया है और पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता को कायम रखा है। हम लोगों ने हमेशा सामूहिक नेतृत्व बनाए रखा है, लेकिन साथ ही, हम नेताओं की भूमिका को छोटा करके दिखाने के विरुद्व हैं। जहां हम इस भूमिका को महत्व देते हैं, वहीं हम व्यक्तियों की गैर ईमानदार और अतिरेकपूर्ण प्रशस्ति का और उनकी भूमिका की अतिरंजना करने का विरोध करते हैं। आज से बहुत पहले, 1949 में ही, कामरेड माओ त्से तुंग के सुझाव पर चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने पार्टी के नेताओं के जन्म दिवसों पर किसी भी प्रकार के सार्वजनिक समारोह आयोजित करने तथा उनके नामों पर जगहों, सड़कों या उपक्रमों के नाम रखने पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया।'' (महान बहस, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन, 1998ए पृष्ठ.102)

इन सब बातों से अनवर होजा को शायद ही आपत्ति हो। वास्तव में जब ये टिप्पणियां प्रकाशित हुई थीं तब इनसे होजा की पूरी सहमति थी और वे बहुत खुश हुए थे। इसे उन्होंने 'मार्क्सवाद–लेनिनवाद की महान जीत' कहा था।

जहां तक महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान माओ के बारे में अतिरेक पूर्ण बातों का सवाल है तो स्वयं होजा ने उन विशेष स्थितियों में इन्हें जायज ठहराया था। तब उन्होंने यह कहा था :

''शायद इन कठिन स्थितियों में चीनी साथियों को माओ की व्यक्ति पूजा की जरूरत है क्योंकि केवल उनका महान व्यक्तित्व ही पार्टी और देश की स्थितियों का इलाज कर सकता है।...'' (Enever Hoxha, Reflections on China, ogh] Vol-I, Page-269,अनुवाद हमारा)

यहां यह बात याद रखने की है कि स्वयं माओ ने इस व्यक्ति पूजा का विरोध किया था (चियांग चिंग को लिखा पत्र) और यदि यह सार्वजनिक तौर पर नहीं किया तो केवल इसी कारण कि इससे दक्षिणपंथियों को फायदा होता।

अल्बानिया की पार्टी में व्यक्ति पूजा का क्या हाल था? स्वयं अनवर होजा इस संबंध में लिखते हैं :

'' हमने व्यक्ति पूजा की भर्त्सना की है और किसी के संबंध में भी हम आज तक इसकी भर्त्सना करते हैं। इस मामले में हम मार्क्स के विचारों के हिसाब से चलते हैं और इसीलिए हमारे बीच, हमारे नेतृत्व में मार्क्सवादी–लेनिनवादी एकता है, हर व्यक्ति जैसा काम करता है और पार्टी के सिद्वान्तों के प्रति जो जितना निष्ठावान होता है उसके आधार पर हम कामरेडों के प्रति प्यार, निष्ठा और मार्क्सवादी–लेनिनवादी आदर दिखाते हैं। हमारे बीच मूर्तिपूजा नहीं है। हम लोग सबसे ऊपर पार्टी की बात करते हैं और अनवर के बारे में केवल उतनी ही बात करते हैं जितना पार्टी और देश का हित मांग करता है। जब कभी भी नीचे से और जनता के बीच से इस दिशा में अति हुई है, केन्द्रीय समिति, पार्टी के नेतृत्व और व्यक्तिगत तौर पर मैंने, जितना मैं कर सकता था और जितना इस संबंध में उन्होंने मुझे सुना, हमेशा सही रास्ते पर चलने के लिए कदम उठाया है और हमेशा उठाते रहेंगे।'' (वही, Vol-II, page-419-420, अनुवाद हमारा)

यहां यह काबिले गौर है कि अनवर होजा स्वयं अपने बारे में अन्य फरुष में बात करते हैं और बताते हैं कि जितना उनका बस चला है और जितनी उनकी सुनी गयी है उतना उन्होंने अपनी व्यक्ति पूजा का विरोध किया है। इसके पहले कहा गया है कि अनवर के बारे में उतनी ही बात होती है जितनी पार्टी और देश का हित मांग करता है। क्या इन सबके बाद अनवर होजा की व्यक्ति पूजा की कोई सीमा बच जाती है? 'देश और पार्टी के हित की मांग', 'जितना बस चला और जितनी मेरी सुनी गई' के बाद फिर क्या बचता है? क्या स्टालिन ने स्वयं अपनी व्यक्ति पूजा करवाई थी या क्या यह माओ ने किया था? सच तो यह है कि व्यक्तिपूजा की जरूरत के बारे में स्टालिन और माओ ने ऐसी बातें कभी नहीं कहीं। उन्होंने तो हमेशा अपनी ओर से व्यक्तिपूजा का विरोध ही किया था।

इस तरह अनवर होजा व्यक्ति पूजा के कहीं ज्यादा बड़े समर्थक साबित होते हैं।

ज. रणकौशल के बारे में

जैसा कि हम जानते हैं अल्बानिया के चीन से संबंध विदेश नीति के रणकौशलात्मक मामलों में मतभेद के कारण खराब होने शुरू हुए। यही बाद में अनवर होजा को चीन की पार्टी को संशोधनवादी घोषित करने तक ले गया।

इसकी शुरुआत चीन द्वारा अमेरिका से सम्बन्ध सामान्य बनाने की कोशिश से हुई। अल्बानिया के नेता इसके खिलाफ थे। जब 1972 में निक्सन चीन गया तब तो अल्बानिया के हिसाब से पानी सिर से गुजरने लगा।

बाद में यूगोस्लाविया और रूमानिया से चीन के संबंध सुधरने के साथ अल्बानिया का यह रुख और ज्यादा गहराता गया।

वैदेशिक सम्बन्धों के मामले में चीन किस दिशा में चल रहा था? इस मामले में 'दि शंघाई टेक्स्ट बुक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनमी' यह कहती है :

''समाजवादी राज्य के विदेश सम्बन्धों का बुनियादी सिद्वान्त है सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद का दृढ़ता से पालन। चीन की क्रांतिकारी राजनयिक लाइन है : सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद के तहत समाजवादी देशों के साथ पारस्परिक सहयोग का संबंध विकसित करना, सभी उत्पीड़ित जनताओं और राष्ट्रों के क्रांतिकारी संघर्षों की मदद करना, क्षेत्रीय अखंडता एवं संप्रभुता के परस्पर सम्मान, अनाक्रमण, एक–दूसरे के आंतरिक मामले में अहस्तक्षेप, समानता एवं परस्पर लाभ और शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के आधार पर अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं के अधीन देशों के साथ शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व के लिए प्रयास करना, आक्रमण और युद्व की साम्राज्यवादी नीति का विरोध करना, और महाशक्तियों के प्रभुत्ववाद का विरोध करना। यह एक मार्क्सवादी लाइन है। यह हमारी जनता के बुनियादी हितों के साथ मेल खाती है।'' (राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्वान्त, वही, पृष्ठ–236)

यह इस किताब के 1974 के संस्करण से लिया गया है यानी तब जब होजा की नजर में चीन की विदेश नीति संशोधनवादी हो चुकी थी। स्वयं अल्बानिया की विदेश नीति क्या थी? अल्बानिया की पार्टी का आधिकारिक इतिहास कहता है :

''अल्बानिया की श्रम की पार्टी ने आपसी हितों व फायदों और एक दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप के आधार पर सभी लोगों और देशों से सही सम्बन्ध बनाने की हमेशा कोशिश की है। यह केवल दोनों साम्राज्यवादी महाशक्तियों और फासीवादी सत्ताओं से सम्बन्ध स्थापित करने के खिलाफ है।

''इसने खासकर, पड़ोसी देशों से क्रांतिकारी मार्क्सवादी– लेनिनवादी आधार पर सही संबंध स्थापित करने और विकसित करने के लिए संघर्ष किया।'' (वही, Page-463, अनुवाद हमारा)

अल्बानिया की यह नीति सभी देशों और लोगों के साथ परस्पर हित और लाभ के आधार पर सम्बन्ध बनाने की बात करती है। बस इनमें दोनों साम्राज्यवादी महाशक्तियां और फासीवादी राज्य नहीं आते।

लेकिन अल्बानिया स्वयं इस नीति के खिलाफ आचरण करता रहा। वह चीन के पाकिस्तान के साथ संबंधों को सकारात्मक मानता था हालांकि पाकिस्तान में अक्सर सैनिक तानाशाहों का शासन होता था। अमेरिका के साथ चीन के सम्बन्धों को भी वह ताइवान को मान्यता देने और वियतनाम से पांव खींचने की सूरत में गलत नहीं मानता था।

लेकिन अल्बानिया के लिए ज्यादा दिक्कततलब यह बात है कि इनके आधार पर लेनिन–स्टालिन के समय में साम्राज्यवादी देशों के साथ जो सम्बन्ध कायम हुए थे वे सब प्रश्नों के दायरे में आ जाते हैं। 1918 मे साम्राज्यवादी जर्मनी से लेकर 1932 में साम्राज्यवादी अमेरिका तक के सारे सम्बन्धों पर सवालिया निशान लग जाता है।

इस तरह विदेश नीति के रणकौशलात्मक मामले में अल्बानिया का संकीर्णतावादी रुख उसे गलत नतीजों तक ले जाता है। साम्राज्यवादी अमेरिका से अपने राजानयिक सम्बन्धों को सामान्य बनाकर चीन कोई गलती नहीं कर रहा था।

जहां तक 'तीन दुनिया' के सिद्वान्त का सवाल है, उस पर हम पहले ही बात कर आये हैं।

विदेश नीति के मामले में चीन के गलत न होने पर भी अल्बानिया के संकीर्णतावादी रुख के चलते इसके चीन से संबंध खराब हुए और वे क्रमशः खराब होते चले गये। माओ, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और चीन के मूल्यांकन में अनवर होजा ने जो बुर्जुआ दृष्टिकोण अपनाया उसे ध्यान में रखें तो यहां मामला केवल संकीर्णतावाद का नहीं था। यहां राष्ट्रवादी दृष्टिकोण भी अपनी भूमिका निभा रहा था।

होजा ने चीन पर यह आरोप लगाया कि वह महाअंधराष्ट्रवाद के दृष्टिकोण का शिकार था तथा महाशक्ति बनना चाहता था। चीन के 1970 के संबंधों को ही नहीं बल्कि 1949 से ही सारे संबंधों को होजा इसी दृष्टि से देखते हैं।

लेकिन यह बात होजा और अल्बानिया पर लागू होती है, चीन पर नहीं। पहली नजर में यह बात समझ में नहीं आती कि होजा बार–बार इस बात पर क्यों जोर देते हैं कि सोवियत साम्राज्यवाद से खतरा चीन को है, यूरोप को नहीं। चीन यह कह रहा था कि इससे खतरा यूरोप को है क्योंकि यूरोप पूंजीवाद का गढ़ है और दोनों साम्राज्यवादी महाशक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता का पहला शिकार यही होगा। होजा नहीं चाहते थे कि सोवियत खतरे के कारण यूरोप के देश एक हों क्योंकि यूरोप की एकता अल्बानिया के लिए खतरनाक थी। अल्बानिया के हित में यही था कि यूरोप के देश आपस में विग्रहों में उलझे रहें। इसी तरह अल्बानिया यह भी चाहता था कि चीन दोनों महाशक्तियों के साथ उलझा रहे। यह भी उसके हित में था। इसीलिए वह चीन के इनके साथ सम्बन्धों के सामान्य बनने के खिलाफ था। चीन द्वारा तीसरी दुनिया के देशों में विश्व क्रांति के केन्द्रित होने की बात के भी अल्बानिया खिलाफ था क्योंकि यह यूरोप व इसी कारण अल्बानिया को विश्व क्रांति की रणनीति में किनारे रख देती थी। अल्बानिया की लगातार यह भी शिकायत रहती थी कि चीन यूरोप पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे रहा है। यूरोप पर ध्यान देने से अल्बानिया स्वतः ही महत्वपूर्ण हो उठता।

इस तरह देखें तो होजा व अल्बानिया इतना ज्यादा चीन की 'गैर क्रांतिकारी' नीति से परेशान नहीं थे जितना कि अपने राष्ट्रीय हितों की अनदेखी किये जाने से। उनका संकीर्ण राष्ट्रीय हित उन्हें चीन का विरोध करने की ओर धकेल रहा था। बस यह उनकी चेतना में मार्क्सवादी–लेनिनवादी रंग ग्रहण कर रहा था या उन्हीं की भाषा में कहें तो वे अपने संकीर्ण राष्ट्रीय हितों की रक्षा को मार्क्सवादी–लेनिनवादी विचारधारा की हिफाजत का जामा पहना रहे थे। माओ को महाअंधराष्ट्रवादी कहने वाले स्वयं संकीर्ण राष्ट्रवाद के शिकार थे। बल्कि इसी कारण उन्हें माओ व चीन की कम्युनिस्ट पार्टी वैसे नजर आ रहे थे। उनका अपना प्रस्थान बिन्दु राष्ट्रवाद होने के कारण वे दूसरों को भी उसी नजर से देख रहे थे। पीछे लौट कर देखें तो होजा और अल्बानिया ख्रुश्चोवी संशोधनवाद का घनघोर विरोध इसलिए कर रहे थे कि ख्रुश्चोव टीटो से सांठ–गांठ कर रहा था, उस टीटो से जो अल्बानिया को हड़प जाना चाहता था। इतिहास ने होजा और अल्बानिया के साथ मजाक किया और उनके अनजाने ही उन्हें मार्क्सवाद–लेनिनवाद की रक्षा में खड़ा कर दिया। अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा की खातिर उन्होंने ख्रुश्चोवी संशोधनवाद के खिलाफ मार्क्सवाद–लेनिनवाद की रक्षा की। लेकिन यही राष्ट्रीय हित जब दूसरे रूप में सामने आये तो वे मार्क्सवाद–लेनिनवाद की ऊपरी तौर पर रक्षा करते हुए वास्तव में उसके विरोध में चले गये। वे रूढ़िवादी मार्क्सवादी बनते हुए वास्तव में संशोधनवादी हो गये।

इतिहास की ऐसी ही द्वन्द्ववादी गति है। वह एक राष्ट्रवादी को मार्क्सवाद– लेनिनवाद की रक्षा में खड़ा कर देता है और फिर उसे रूढ़िवादी मार्क्सवादी से संशोधनवादी में तब्दील कर देता है।

अंतिम उद्वरण के तौर पर हम अनवर होजा की 25 जून 1975 की यह टिप्पणी पेश करते हैं :

''...हमसे घुटना नहीं टेकाया जा सका है और न ही हम डरते हैं, न ही हम भूखों मरेंगे लेकिन हम सम्मान के साथ जियेंगे, मुक्त, स्वतंत्र और संप्रभुता सम्पन्न मार्क्सवादी–लेनिनवादियों के रूप में, अल्बानियाई कम्युनिस्टों के रूप में, गौरवशाली और महान जनता के फत्रों के रूप में जिसने शताब्दियों के दौरान कभी भी घुटने नहीं टेके।'' (Enever Hoxha, Reflections on China, ogh Vol-II, Page 125, अनुवाद हमारा)

यह टिप्पणी होजा ने चाउ–एन–लाई की इस सलाह की प्रतिक्रिया में की थी कि चीन अल्बानिया की ज्यादा मदद नहीं कर सकता और अल्बानिया को अपने पड़ोसी बाल्कन देशों के साथ सहयोग बढ़ाना चाहिए।

IV इतिहास की द्वन्द्वात्मक गति

क्या यह संभव है कि कोई राष्ट्रवादी दृढ़तापूर्वक मार्क्सवाद–लेनिनवाद की रक्षा में, पूर्णतया अंतर्राष्ट्रवादी विचारधारा की रक्षा में खड़ा हो जाय? और क्या यह संभव है कोई मार्क्सवादी वक्त के साथ इसलिए संशोधनवादी हो जाय कि वह मार्क्सवाद के सिद्वान्तों पर दृढ़तापूर्वक खड़ा था?

इस संबंध में पहली बात तो यही है कि द्वन्द्ववाद का यह बुनियादी सिद्वान्त है कि हर चीज अपने विपरीत में रूपांतरित हो जाती है। समय और परिस्थितियां बदल जाने पर चीज अपने विपरीत में रूपान्तरित हो जाती है।

मार्क्स और एंगेल्स ने जब अपना सर्वहारा का सिद्वान्त पेश किया तो उन्होंने घोषित किया कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता, कि सारी दुनिया के मजदूरों को एक होकर विश्व पूंजीवाद की कब्र खोदनी होगी। उन्होंने नारा दिया 'दुनिया के मजदूरों, एक हो'। लेकिन वक्त के साथ इस नारे को दूसरे रूप में चरितार्थ होना था। देशों की सीमाएं मिटकर इसे चरितार्थ नहीं होना था बल्कि देश की सीमा खींचने के लिए और उसके जरिये इसे चरितार्थ होना था।

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि एक मायने में स्वयं पूंजीवाद अपने विपरीत में बदल गया। यह मुक्त प्रतियोगिता वाले पूंजीवाद से एकाधिकारी पूंजीवाद में बदल गया और इस तरह पूंजीवादी साम्राज्यवाद का उदय हुआ। इस पूंजीवादी साम्राज्यवाद ने दुनिया के बाकी देशों को मुट्ठी भर विकसित देशों, साम्राज्यवादी देशों के अधीन कर दिया।

इस साम्राज्यवाद के उदय के साथ अब सभी देशों में एक साथ क्रांति के बदले पहले कुछ या एक देश में ही, सबसे कमजोर कड़ी में क्रांति की संभावना पैदा हुई। इसके साथ उत्पीड़ित, गुलाम देश/राष्ट्र विश्व क्रांति की धारा में खींच लिए गये। साम्राज्यवाद के विरुद्व दोनों मोर्चे– साम्राज्यवादी देशों में सर्वहारा क्रांति का मोर्चा और गुलाम देशों में राष्ट्रीय मुक्ति का मोर्चा आपस में जुड़ गये। दूसरा पहले का अभिन्न अंग बन गया।

यही नहीं, गुलाम/उत्पीड़ित देशों में राष्ट्रीय मुक्ति की कमान सर्वहारा के हाथों में चली गई। विश्व पूंजीवाद में परिवर्तन के साथ इन देशों का बुर्जुआ भी अब बुर्जुआ जनवादी क्रांति कर सकने के लिए साहसहीन हो गया। वह सुधार ही कर सकता था, सुधार के जरिये आगे बढ़ सकता था।

इस तरह सर्वहारा क्रांतियों और राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों दोनों में ही सर्वहारा को नेतृत्व देना था। और सर्वहारा का दर्शन मार्क्सवाद था। इसी से वह विचित्र ऐतिहासिक स्थिति पैदा हुई जिसमें राष्ट्रीय मुक्ति के लिए, अपना अलग राष्ट्र बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीयतावादी सर्वहारा वर्ग को राष्ट्रवाद के कार्यभार पूरे करने पड़े। विश्व क्रांति ने यह विचित्र मोड़ लिया और अंतर्राष्ट्रवाद के नाम पर इस कार्यभार से मुकरने का मतलब क्रांति से ही मुकरना होता। विश्व क्रांति ने साम्राज्यवाद के उदय के साथ जो मोड़ लिया था उसके हिसाब से न चलने का मतलब होता रूढ़िवादी मार्क्सवादी बने रहते हुए संशोधनवादी हो जाना, क्रांतिकारी के बदले सुधारवादी हो जाना। यह मार्क्स के सूत्रों को मार्क्स की क्रांतिकारी पद्वति पर प्रधानता देना होता।

लेकिन जब इतिहास ने यह मोड़ ले लिया, जब बुर्जुआ वर्ग के कार्यभार (बुर्जुआ जनवादी क्रांति के, राष्ट्रीय मुक्ति के कार्यभार) सर्वहारा वर्ग के जिम्मे आ गये और जब इन्हें पूरा करके ही सर्वहारा आगे बढ़ सकता था, तब इस बात की भी संभावना पैदा हो गई कि राष्ट्रवाद अपना खेल खेले। यह इस रूप में कि, सर्वहारा की पार्टी में ऐसे कई लोग आ सकते थे जो मूलतः राष्ट्रवादी थे, कम्युनिस्ट नहीं। इसी तरह राष्ट्रवादी हित खुद को मार्क्सवादी–लेनिनवादी उद्देश्य के रूप में पेश कर सकते थे। ख्रुश्चोव के संशोधनवाद का इसलिए विरोध किया जा सकता कि वह मार्क्सवाद– लेनिनवाद में संशोधन कर उसकी क्रांतिकारी आत्मा को नष्ट कर रहा था, उसे सुधारवादी सिद्वान्त में तब्दील कर रहा था। लेकिन उसका इसलिए भी विरोध किया जा सकता था कि ख्रुश्चोवी संशोधनवाद संशोधनवादी यूगोस्लाविया के साथ सांठ–गांठ कर अल्बानिया की स्वधीनता के लिए खतरा पैदा कर रहा था। फर्क बहुत बड़ा होने के बावजूद शुरू में अपने असली चरित्र को छिपाये रख सकता था। यहां तक कि इसके वाहकों को खुद भी इसका ज्ञान नहीं हो सकता था।

इन्हीं वजहों से यह हुआ कि महान बहस में रूमानिया, उत्तरी कोरिया और वियतनाम की पार्टियों ने बीच की अवस्थिति ली। इसी वजह से यह हुआ कि अमेरिका की समूची सैनिक ताकत को पराजित करने वाली वियतनाम की कम्युनिस्ट पार्टी विजय के तुरंत बाद उल्टे रास्ते पर चल पड़ी और साम्राज्यवादी शांतिपूर्वक दो दशक में वह हासिल कर ले गये जो वे युद्व में नहीं कर पाये थे।

राष्ट्रीय मुक्ति का कार्यभार वस्तुगत तौर पर राष्ट्रवादी होने के चलते इस तरह की उलट–बासियों को जन्म दे सकता था और उसने दिया। न केवल राष्ट्रवाद ने कम्युनिस्टों का इस्तेमाल किया बल्कि विश्व इतिहास के प्रवाह के दबाव ने ढेरों राष्ट्रवादियों को मजबूर किया कि वे अपने को कम्युनिस्टों के रूप में पेश करें। केवल समय ही उनके असली चरित्र को उद्घाटित कर सकता था। ल्यू–शाओ–ची, देंग–श्याओ–पिंग और अनवर होजा ऐसे ही लोग थे।

रूढ़िवाद और संशोधनवाद के मामले में भी यही द्वन्द्ववादी गति काम करती है। कोई क्रांतिकारी रणनीति या कार्यक्रम केवल निश्चित देश–काल में ही क्रांतिकारी होता है, इन्हें बदल दीजिये और वह सिद्वान्त या तो वाम–दुस्साहसवाद हो जायेगा या फिर सुधारवाद। महान नंसीसी क्रांति के जैकोबिन उस क्रांति के धुर क्रांतिकारी लोग थे लेकिन अक्टूबर 1917 में एकदम सुधारवादी साबित होते।

पूंजीवाद के विकास के साथ, इसके नये तौर तरीके ग्रहण करने के साथ क्रांति की रणनीति और रणकौशल में परिवर्तन अत्यावश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाता और फराने सिद्वान्तों पर खड़े रहा जाता है तो यह अनिवार्यतः सुधारवाद की ओर ले जायेगा और यदि इसके हिसाब से व्याख्या की गई तो वह मार्क्सवाद की संशोधनवादी व्याख्या हो जायेगी। इस तरह फरानी सही लाइन पर दृढ़तापूर्वक खड़ा होना बदले हुए जमाने में सुधारवाद–संशोधनवाद की जमीन पर खुद को खड़ा करना होगा। इतिहास में इसके सबसे प्रतिनिधिक उदाहरण काउत्स्की और प्लेखानोव हैं जो पूर्णतया रूढ़िवादी होते हुए संशोधनवादी हो गये और दोनों ने अपने आप को अक्टूबर क्रांति के विरोध में खड़ा पाया। रूढ़िवाद अपने विपरीत यानी संशोधनवाद में रूपान्तरित हो गया।

अनवर होजा के साथ भी यही हुआ। सोवियत संघ में पूंजीवाद की फनर्स्थापना के साथ समाजवादी समाज के चरित्र और सर्वहारा तानाशाही को बनाये रखने तथा कम्युनिज्म की ओर बढ़ने के बारे में तीखे सवाल उठ खड़े हुए। यह स्पष्ट हो गया कि इन सवालों का जवाब पाये बिना समाजवादी समाज को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है और न ही वहां पूंजीवादी फनर्स्थापना को रोका जा सकता है। इसके साथ यह भी स्पष्ट हो गया कि इसके लिए मार्क्सवाद–लेनिनवाद के फराने सिद्वान्त नाकाफी हैं। मार्क्स–लेनिन में इन सवालों के जवाबों के कुछ बीज रूप तो हैं लेकिन इससे आगे मुकम्मल जवाब नहीं। स्टालिन के पास न केवल इनके जवाब नहीं थे बल्कि वे सवाल को सही रूप में पेश करने में भी असफल रहे। उन्होंने समाजवादी समाज में फनर्स्थापना का खतरा मूलतः बाहर से, साम्राज्यवाद की ओर से माना। ऐसे में केवल फराने सिद्वान्तों तक खुद को सीमित रखने से काम नहीं चलने वाला था। खासकर स्टालिन को सौ प्रतिशत सही मानकर उनसे जौ मात्र भी इधर–उधर न होना खतरनाक था। अनवर होजा ने यही किया।

इसके बदले माओ ने समस्या की गहराई में पैठने का प्रयास किया और वे सोवियत संघ में पूंजीवाद की फनर्स्थापना की जांच–पड़ताल करते हुए सर्वथा नवीन निष्कर्षों तक पहुंचे। इसके लिए उन्हें मार्क्स के 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' लेनिन की 'राज्य और क्रांति' तथा अक्टूबर क्रांति के बाद की रचनाओं में महत्वपूर्ण सूत्र मिले। इसके अलावा पेरिस कम्यून के मूल्यवान अनुभव मौजूद ही थे। इन सबसे प्रस्थान करते हुए माओ समाजवादी समाज के चरित्र के अनुद्घाटित पहलुओं तक पहुंचने में कामयाब हुए और साथ ही इस चरित्र से उद्भूत पूंजीवाद की फनर्स्थापना के संभावित खतरों तक भी। इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने इस फनर्स्थापना को रोकने तथा सर्वहारा की तानाशही के तहत समाजवादी क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का अप्रतिम सिद्वान्त पेश किया। इसके पश्चात् 1966 से 1976 तक उन्होंने चीन में इस क्रांति को स्वयं नेतृत्व प्रदान किया।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का यह सिद्वान्त मार्क्सवाद–लेनिनवाद में माओ का महान योगदान था। इसने मार्क्सवाद–लेनिनवाद को नयी ऊंचाई तक पहुंचा दिया। इसने मार्क्सवाद–लेनिनवाद को मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा के स्तर तक पहुंचा दिया। अब मार्क्सवादी वह नहीं रह गया जो केवल वर्ग संघर्ष और सर्वहारा की तानाशाही को स्वीकार करता हो बल्कि मार्क्सवादी होने के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह समाजवादी समाज में सर्वहारा की तानाशाही के तहत वर्ग संघर्ष को अंत तक चलाने, कम्युनिज्म की स्थापना तक चलाने की आवश्यकता को स्वीकार करता हो, वह समाजवादी समाज में सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता को स्वीकार करता हो।

अनवर होजा मार्क्सवाद–लेनिनवाद में इस विकास को, माओ के इस महान योगदान को नहीं आत्मसात कर पाये। उन्होंने चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की तर्ज पर अपने यहां विचारधारात्मक–राजनीतिक शिक्षा अभियान तो चलाया लेकिन वे वहां सांस्कृतिक क्रांति नहीं छेड़ पाये। वे चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति से वैचारिक और व्यवहारिक तौर पर एक दूरी बनाये रहे। वे कभी नहीं स्वीकार कर पाये कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का सिद्वान्त मार्क्सवाद–लेनिनवाद में गुणात्मक विकास है। वे माओ को महान मार्क्सवादी मानते हुए भी अपने को मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्टालिन को मानने तक सीमित किये रहे।

इसका परिणाम वही हुआ जो प्लेखानोव, काउत्स्की के साथ हुआ था। मार्क्सवाद में नये विकास को न समझ पाने, न आत्मसात कर पाने के कारण वे फरानी अवस्थितियों पर अड़े रहे और अंततः संशोधनवादी हो गये। समाजवाद की नई परिस्थितियों में मार्क्सवाद के सृजनात्मक विकास से इंकार कर वे रूढ़िवादी मार्क्सवादी बने रहे और इस तरह संशोधनवादी हो गये क्योंकि माओ विचारधारा के खंडन का उनका प्रयास उन्हें मार्क्सवाद की गलत, विकृत व्याख्या करने तक ले गया। द्वन्द्वात्मक गति ने रंग दिखाया और रूढ़िवादी मार्क्सवादी, संशोधनवादी हो गया।